श्रीपाल-चरित्र

साध्वी (डॉ.) हेमप्रज्ञाश्री

श्रीपाल चरित्र

लेखिका
परम पूज्या श्री विचक्षणश्रीजी महाराज साहब
की शिष्या
परमपूज्या श्री मणिप्रभाश्रीजी महाराज साहब की निश्रावर्तिनी
साध्वी श्री हेमप्रज्ञाश्री

पुस्तक : श्रीपाल चरित्र

लेखिका : साध्वी हेमप्रज्ञाश्री

प्रथम संस्करण : अप्रैल १९८७

द्वितीय संस्करण : १९९९

मूल्य : रुपये १०/-

प्रकाशक :
विचक्षण प्रकाशन
नईदुनिया परिसर
बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग
इन्दौर

*

मुद्रक :
नईदुनिया प्रिंटरी
बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग
इन्दौर- ४५२००९ (म.प्र.)

Title : Shripal Charitra

Author : Sadhvi Hemprajnashri

First Edition : April 1987

Second Edition : 1999

Price : Rs. 10/-

Printed : Naidunia Printery, Indore

प्रस्तावना

धर्मप्राण आर्यावर्त्त के सभी धर्मों में व्रत-कथाओं का प्रचार बाहुल्य है। कथावस्तु के माध्यम से कठिन से कठिन तत्त्व साधारण जनता भी सरलता से आकलन कर अपने जीवन में उतार सकती है। त्रिकाल अबाधित जैन धर्म जितना वैज्ञानिक और व्यवहार्य है उसे अनुपम और सर्वाङ्गीण सत्य कहा जा सकता है जबकि अन्यत्र यह वैशिष्ठ्य अप्राप्य है क्योंकि वे एकांगी हैं। जैन धर्म का अनेकान्तवाद, अहिंसा और अपरिग्रह एवं कर्म सिद्धान्त वस्तुतः उसकी निजी सम्पत्ति है। दूसरों ने उसका खण्ड-खण्ड बटोरा है जबकि जैन धर्म में अखण्डता होने के कारण वह विश्व धर्म होने की योग्यता रखता है। कर्म सिद्धान्त की महनीयता बोध कराने वाली तथा आत्म-शुद्धि की बाह्याभ्यन्तर शोधिका नवपद सिद्धचक्र ओलीजी की व्रत कथा जो मगधेश्वर श्रेणिक बिम्बिसार को गणधर भगवान् गौतम स्वामी ने कही थी, विंशतितम तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल की है, जिसे इस ग्रन्थ में सुचारु रूप से बतलाया है।

कर्मबन्ध के सूक्ष्म बीज विपाक उदय में आने पर कितना भयंकर और दुर्गतिदायक होता है, इसे समझकर जीवन को ऊँचा उठाने में एक-एक बात गहराई से सोचकर जीवन का तदनुरूप निर्माण करने की महती आवश्यकता है। नवपद के नौ दिन चैत्र आसोज में आते हैं और आयंबिल तप के साथ जप, जो सिद्धचक्र के ध्यानपूर्वक २०-२० माला एकाग्रचित्त, एकाग्रदृष्टि और एक आसन पर बैठकर किया जाय खमासमण के साथ तद्गत गुणों पर विचार किया जाय तो निश्चय ही इह परलोक सुखदायी और क्रमशः सिद्धि सौध प्राप्ति के साधन हैं। एक अपरिचित कुष्टी के गले बाँध दी जाने वाली राजकुमारी इस नवपदाराधना से अमित ऐश्वर्ययुक्त विस्तृत राज्य की सुख समृद्धि प्राप्त करती है और कर्त्तत्वाभिमानी राजा प्रजापाल पर एक करारी चोट है। श्रीपाल का कुष्ट रोग दूर होना भी एक विशिष्ट वैज्ञानिक चमत्कार है। आयंबिल तप शुद्ध अन्न और पानी से किया जाता है। आजकल पचासों तैयारियाँ नमक, मिर्च-मसालेयुक्त किया जाने वाला कहाँ तक उचित है यह विचारणीय है। मामूली खाज-खुजली में भी चिकित्सक लोग नमक निषेध करते हैं तो कुष्ट रोग वाले को यदि नमक दिया जाय तो कोढ़ में कीड़े पड़ जाते हैं। आयंबिल के पच्चक्खाण भी भंग होते हैं, अतः नीवी एकाशन में उपयोग करने वाले स्वतन्त्र हैं। यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है।

श्रीपाल चरित श्वेताम्बर-दिगम्बर उभय सम्प्रदाय मान्य होने से प्राचीनता निर्विवाद है। प्राचीन साहित्य में सं. १४२८ रयणसे-हरसूरि कृत सिरिवाल निव कहा सं. १५१४ में सत्यराजगणिकृत संस्कृत कथा के पश्चात् गुणरत्न (१७ वीं शती) सं. १६६२ में रत्नलाभ, सं. १७२२ में महिमोदय, सं. १७२५ में मनसोम, १७३५ में रामचन्द्र, १७४० में जिनहर्ष, १७४२ में लघुरास जिनहर्ष, सं. १८०६ में रघुपति, सं. १८३७ में लालचन्द, सं. १८६८ में जयकीर्ति, १८६९ में क्षमाकल्याण, सं. १८.... में तत्त्वकुमार, सं. १९०७ में देवमुनि, सं. १९०८ में चारित्रनंदि, फिर २०वीं शती में जिनकृपाचन्द्रसूरि, रामऋद्धिसारगणि, उ. लब्धिमुनि वीरपुत्र आनन्दसागरजी, काशीनाथ जैन आदि ने हिन्दी में ग्रन्थ प्रकाशित किए। उ. यशोविजयजीका श्रीपाल रास पर्याप्त प्रसिद्ध है जो सं. १७३८ रांदेर में रचित है। यह रास अनेकशः प्रकाशित है। त्रिस्तुतिक मुनि न्यायविजयजी ने अच्छा संस्करण निकाला है। मुनि महेन्द्रकुमारजी प्रथम के दो संस्करण निकल चुके हैं। दिगम्बरों में न्यामतराय कृत नाटक ६०-७० वर्ष प्रकाशित हुआ था और भी अनेक होंगे। हरिप्रसाद उपाध्याय ने भी एक नाटक लिखा था। थाणा नगरी के मन्दिर में श्रीपालजीकी जीवनी मकराना पत्थर के शिल्प में श्रीजिनऋद्धि सूरिजी के उपदेश से निर्मित है। चित्रों में चम्पापुरी तीर्थ व बीकानेर में भी हैं। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध शीतलनाथ जिनालय में जयपुर के चित्रकार गणेश मुसब्बर कृत बड़े-बड़े चित्र लगे हुए हैं।

आ. श्रीकान्तिसागर सूरिजी व महो. विनयसागरजी के संग्रह एवं अन्य ज्ञान-भंडारों में अनेक अति सुन्दर सचित्र प्रतियाँ हैं। ओली तपविधि आदि के अनेक प्रकाशन हो चुके हैं। नवपदजी की कई पूजायें व बहुसंख्यक स्तवन भी उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत श्रीपाल चरित्र परमपूज्य आचार्य महाराज वीर पुत्र आनन्दसागर सूरिजी लिखित संस्करण की आधुनिक भाषा में परमपूज्य जैन कोकिला प्रवर्त्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी महाराज साहब की सुशिष्या श्री हेमप्रज्ञा श्रीजी महाराज ने सुसंस्कारित कर देने की कृपा की है, अतः आपका सहयोग धन्यवादार्ह है।

–भँवरलाल नाहटा

श्रीपाल चरित्र

अर्थ सहयोग

१००० प्रति	श्रीमती स्व. चंचलबाई प्रतापचंदजी चोवटिया एवं स्व. हजारीमलजी प्रतापचंदजी चोवटिया की स्मृति में श्री कांतिलाल हजारीमल एण्ड कं., धूलिया द्वारा।
५०० प्रति	श्रीमती आशीबाई आइदानजी लोढा, धमतरी द्वारा।
५०० प्रति	स्व. जसराजजी नाहर की स्मृति में प्रतापचंद – रोशन कुमार, रतनचंद संतोष कुमार नाहर, धमतरी द्वारा।
५०० प्रति	प्रति स्व. राजमलजी पन्नालालजी चौधरी नागोर की स्मृति में श्रीमान शीखरचंदजी, श्री चंदजी चौधरी, कोबे (जापान) द्वारा।

समर्पण

पारसमणि के स्पर्श से, लोहा भी तत्क्षण हेम बने,
चिन्तामणि चिन्ता को चूरे, दिनमणि हरे अंधेरे घने,
नभोमणि जब गगन में चमके, तारागण सब धूमिल बने,
संत-शिरोमणि मणिप्रभामय, गुरु हरे पातक घने!'

जन-जीवन के कलाकार,
हे पथ-प्रदर्शक, हे उदार,
भव-सिन्धु अतल, हे कर्णधार,
तुम बिन कर सकता कौन पार,
मैं उजड़ा उपवन, तुम बसंत,
मैं अज्ञानी, तुम प्रज्ञावंत,
हे जिनशासन के शृंगार,
नमन है, वंदन बारम्बार!'

गुरुचरणरेणु
साध्वी हेमप्रज्ञाश्री

जैन कोकिला समतामूर्ति
पूज्याश्री विचक्षण श्रीजी महाराज साहब

'सागर से गम्भीर गहन, मेघों से तुम उच्च महान,
जीवन-भर सारी जगती को, बाँटे थे तुमने अनुदान!
'विचक्षण' साधना की राह, कदम तुम्हारे थे गतिमान,
'तन में व्याधि, मन में समाधि', आत्मज्ञानी की है पहचान!!'

स्वकथ्य

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनः चन्दनं चारु गन्धं,
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकाण्ड,
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णम्,
प्राणान्ते ऽ पि प्रकृति विकृति जायते नोत्तमानाम्।

चन्दन को पुनः पुनः घिसने पर भी वह सुगन्ध देता है, इक्षुखण्ड़ / गन्ने को पुनः पुनः पीलने पर भी मधुर रस मिलता है, कंचन / स्वर्ण को कितना भी तपाया जाए, वह निखरता चला जाता है ; उसी प्रकार प्राणान्त उपसर्ग, कठिन परिस्थिति में भी उत्तम व्यक्ति अपनी प्रकृति / स्वभाव का कदापि परित्याग नहीं करते हैं।

मैनासुन्दरी ने कोढ़ी – पति का वरण किया; किन्तु कर्म-सिद्धान्त के प्रति श्रद्धा को विचलित नहीं होने दिया। पुण्य-कर्म के उदय ने, भक्ति-जप-तप के त्रिवेणी संगम से हुई भाव विशुद्धि ने मैना के जीवन को पुनः सुखों से हरा-भरा कर दिया।

श्रीपाल ने धवल जैसे अधम प्रमृति के व्यक्ति के प्रति अपनी उत्तमता को अखण्ड रखा। धवल निकृष्टता के धरातल पर पहुँच गया; किन्तु श्रीपाल ने अपनी उत्कृष्टता का त्याग नहीं किया। प्रत्येक परिस्थिति में सहजता सौम्यता, समता का गुण श्रीपाल के जीवन में दिखाई देता है।

मैनासुन्दरी एवं श्रीपाल का जीवन वर्ष में दो बार चैत्र तथा आसोज माह में वांचन किया जाता है तथा नवपद ओली की तपाराधना होती है।

नवपद – ओली में आयम्बिलतप के साथ जप, स्नात्रपूजा, नव-चैत्यवंदन, देवं-वन्दन, खमासमण, प्रदक्षिणा तथा कायोत्सर्ग आदि विधि की सेवन होता है। आयम्बिल में एक धान्य का उपयोग होता है। नवपद के रंगों के अनुसार धान्य-चयन किया गया है।

अरिहन्त का वर्ण शुक्ल है, अतः चावल; सिद्ध का वर्ण रक्त है, अतः गेहूँ; आचार्य का वर्ण पीला है, अतः चना; उपाध्याय का वर्ण हरा है, अतः मूँग; साधु का वर्ण काला है, अतः उड़द का उपयोग आयम्बिल में होता है। दर्शन,

ज्ञान, चारित्र एवं तप में चावल लिया जाता है।

चैत्र एवं आसोज काल ऋतु संक्रान्ति का समय है, अतः विगयरहित एवं लवणरहित भोज्य पदार्थ स्वास्थ्य के हितकारी हैं ही तथा रंग-व्यवस्था भी स्वास्थ्य हेतु लाभप्रद है। श्वेतवर्ण - सात्त्विकता, रक्त वर्ण - स्फूर्ति, पीतवर्ण - आनन्द, हरितवर्ण - शान्ति देता है तथा कृष्णवर्ण - विपरीत प्रभाव से मुक्त रखता है।

देव - गुरु - धर्म रूप नवपदों की आराधना में आयम्बिल तप का स्वास्थ्य - लाभ आनुषंगित पक्ष है, मुख्यतया - आहार की आसक्ति टूटती है एवं अनासक्ति का अभ्यास होता है, साधक स्वाद - विजय - करता है! जप, भक्ति आदि से भाव-विशुद्धि कर, श्रीपाल-मैना के जीवन-चरित्र से प्रेरणा लेकर साधक मोक्ष-पथ, पर अग्रसर होता है।

श्रीपाल-चरित्र के लेखन का सुअवसर प्राप्त हुंआ – सन् १९८१ में; जब श्री ज्ञानचन्दजी लूणावत ने अध्यात्मज्ञान प्रदात्री गुरुवर्या श्री मणिप्रभा श्रीजी से श्रीपाल चरित्र लिखने या लिखवाने का अनुरोध करते हुए कहा, समतामूर्त्ति गुरुवर्या विचक्षण श्रीजी महाराज साहब की प्रबल भावना थी – श्रीपाल चरित्र की पुरानी प्रतियाँ समाप्त होने जा रही हैं, अतः इसका नवीन ढंग से पुनर्प्रकाशन होना चाहिए।' उनकी बात सुनकर पूज्याश्री ने इस कार्य के लिए मुझे आदेश दिया। मैं विचार में पड़ गई। कार्य मुझे कठिन प्रतीत हो रहा था। संयोगवश, कुछ दिनों पश्चात् नवपद ओली प्रारम्भ हुई। पूज्याश्री की प्रवचन धारा को मैं कागजों में समेटने लगी। इस प्रकार मेरी दृष्टि में जो कठिन कार्य था, वह सहज ही सम्पन्न हो गया।

आत्मज्ञानी पूज्या गुरुवर्या श्री विचक्षण श्रीजी म.सा. का परोक्ष आशीर्वाद तथा मरुधर-ज्योति पूज्या गुरुवर्या श्री मणिप्रभा श्रीजी म.सा. का वात्सल्यपूर्ण निर्देशन इस कार्य की सम्पन्नता में सहायक बना है। पूज्य-चरणों में अन्नत-अन्नत नमन।

गुरु विचक्षणमणिचरणरेणु

साध्वी हेमप्रज्ञा श्री

शंहादा (धूलिया)

१५, अगस्त १९९९

श्री सिद्धचक्र (नवपद)

(१) अरिहंत
(२) सिद्ध
(३) आचार्य
(४) उपाध्याय
(५) साधु
(६) सम्यग्दर्शन
(७) सम्यग्ज्ञान
(८) सम्यंक्चारित्र
(९) सम्यग्तप

* ॐ नमः सिद्धेभ्यः *

श्री श्रीपाल चरित्र

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अनेक सम्पत्तियों से समृद्ध मगध देशान्तर्गत राजगृही नाम की मनोहर नगरी थी। जहाँ न्यायप्रिय, प्रजा वत्सल, धर्मनिष्ठ राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनके राज्य में प्रजा सब प्रकार से सुख का अनुभव करती थी।

एक समय राजगृही नगरी के समीप वणिक ग्राम के उद्यान में अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर पधारे। देवों ने अत्यन्त उत्साह एवं भक्तिपूर्वक समवसरण की रचना की। वनपाल ने भगवान् के आगमन का वृत्तान्त राजा से आकर निवेदन किया। राजा ने सिंहासन से उठ कर उद्यान के अभिमुख हो भगवान् को नमस्कार किया और वनपाल को पारितोषिक-स्वरूप अपने सर्व आभरण उतार कर दिये तथा प्रजा और परिवारजन सहित भगवान् के दर्शनों की तैयारी करने लगा।

अपने मन्त्रियों तथा परिवार और प्रजाजन सहित समवसरण के पास पहुँच छत्र, चामर, वाहनादिक तज कर राजा ने स्तुतिपूर्वक नमस्कार किया। भगवान् की तीन प्रदक्षिणा दे हाथ जोड़कर वन्दना करते हुए वे मनुष्यों की पर्षदा में बैठे। अनन्तर गणधरदेव गौतम स्वामी को सविनय नमस्कार निवेदन किया। गौतम स्वामी ने अपनी देशना में आत्मशुद्धि के आलम्बन स्वरूप 'सिद्धचक्र' के प्रभाव का

अतिशय वर्णन किया– सिद्धचक्र अर्थात् नवपद– १. अर्हत्पद २. सिद्धपद ३. आचार्यपद ४. उपाध्यायपद ५. साधुपद ६. दर्शनपद ७. ज्ञानपद ८. चारित्रपद और ९. तपपद। अर्हत्पद एवं सिद्धपद साध्य हैं, आचार्यपद, उपाध्यायपद और साधुपद साधक हैं तथा दर्शनपद, ज्ञानपद, चारित्रपद और तपपद साधन हैं। उन साधनों की सहायता से साधक स्वयं साध्यपद प्राप्त करता है। ये नवपद जीव को सदा सुख देने वाले हैं और उसका कल्याण करने वाले हैं। अतः राजा श्रीपाल के समान इनकी आराधना सतत करनी चाहिए।

यह सुनकर राजा श्रेणिक ने श्रीगणधरदेव से अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए प्रार्थना की "हे प्रभो! ये राजा श्रीपाल कौन थे? और इन्होंने सिद्धचक्र का आराधन किस प्रकार किया था? इन्हें किस फल की प्राप्ति हुई थी? कृपया सम्पूर्ण चरित्र निरूपित कर अनुगृहीत करें।" राजा की इस प्रार्थना को स्वीकार कर तपोमूर्ति गौतम स्वामी ने भगवान् की दिव्य-देशना के अनुसार महापुण्यशाली श्रीपाल नरेश के चरित्र का व्याख्यान इस प्रकार किया–

(१)

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत भगवान् के शासनकाल में मालव देश में समृद्धिशालिनी उज्जयिनी नामकी एक नगरी थी। प्रजापाल नाम के राजा वहाँ के कुशल शासक थे। उनके अनेक रानियाँ थीं; उनमें से सौभाग्यसुन्दरी तथा रूपसुन्दरी नामकी दो रानियाँ प्रमुख थीं। सौभाग्यसुन्दरी शैव धर्म को मानने वाली (शिवाराधक) और रूपसुन्दरी जैनधर्म का पालन करने वाली थी। किसी एक समय दोनों प्रधान रानियाँ

गर्भवती हुईं और स्वविवेक से अपने-अपने गर्भ का पालन करने लगीं। रूपसुन्दरी अपना अधिकांश समय सुदेव-सुगुरु और सुधर्म की सेवा-पूजा-भक्ति में व्यतीत करती थी और दीन-हीन प्राणियों को अनुकम्पा दान देती थी। सुगर्भ के प्रभाव से धर्मकार्य में रत रहती थी। गर्भकाल पूर्ण होने पर दोनों रानियों ने एक-एक पुत्री को जन्म दिया। राजकुमारियों का जन्मोत्सव बड़े हर्षोल्लास पूर्वक मनाया गया। सौभाग्यसुन्दरी की पुत्री का नाम सुरसुन्दरी और रूपसुन्दरी की पुत्री का नाम मदनसुन्दरी (मयणासुन्दरी) रखा गया। राजकीय वैभव एवं अतिशय लाड़-प्यार में पलती हुई दोनों राजकुमारियाँ बड़ी होने लगीं।

प्रजापालक ने अपनी कन्याओं को योग्य वयस्क देख कर यह सोचा कि इनका जीवन यदि विद्या के द्वारा विभूषित हो जाए तो वह सफल होगा क्योंकि विद्यावान पुरुष विज्ञ व्यक्तियों के द्वारा सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री महिला समाज में श्रेष्ठ पद को प्राप्त करती है। भगवान् आदिनाथ ने भी स्वयं अपनी दोनों पुत्रियों – ब्राह्मी और सुन्दरी को विद्याध्ययन करा कर शिक्षित किया था। क्योंकि विद्या मनुष्य का बन्धु है तथा मित्र है। विद्या कल्याण करने वाली है; विद्यारूपी धन साथ जाता है, विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करती है–

विद्या बन्धुश्च मित्रं च विद्याकल्याणकारकम्।
सहगामि धनं विद्या, विद्या सर्वार्थसाधिनी।।

नीतिज्ञ भी यही कहते हैं कि "माता शत्रु पिता वैरी, येन बालो न पाठितः"। यही विचार कर राजा ने सुरसुन्दरी को शिवभूति पण्डित के पास और मदनसुन्दरी को पण्डित

शिरोमणि सुबुद्धि के पास अध्ययनार्थ रखा। कन्याओं को शिक्षित करने में दोनों पण्डितों ने कोई कमी नहीं रखी।

सुरसुन्दरी व्याकरण, तर्क, साहित्य, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, संगीत नाटक आदि में तथा स्त्रियों की चौसठ कलाओं में निपुण हुई।

मदनसुन्दरी ने इस सम्पूर्ण लौकिक ज्ञान के साथ-साथ जैन धर्म के विविध शास्त्रों का भी अध्ययन किया। वह जैन सिद्धान्तों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों को भी समझने लगी। कर्म सिद्धान्त का उसने गहराई से अध्ययन किया था। उसका जीवन धर्ममय हो गया था, वह षट्कर्मों के पालन में सदैव सावधान रहती थी। (१) जिनेन्द्र पूजा, (२) गुरु उपासना, (३) स्वाध्याय, (४) संयम, (५) तप; और (६) दान – इन आवश्यक कर्मों में कभी प्रमाद नहीं करती थी।

अध्ययन पूर्ण होने पर दोनों पण्डित अपनी-अपनी शिष्या के साथ राजदरबार में उपस्थित हुए। राजा ने दोनों पण्डितों का यथायोग्य सम्मान किया। क्योंकि उन्होंने कन्याओं को शिक्षा सम्पन्न किया था, सन्मति प्रदान की थी। जीवन में सन्मति और सम्पत्ति दोनों का महत्त्व है लेकिन जितना महत्त्व सन्मति का है उतना सम्पत्ति का नहीं। विद्वान् और विदुषियाँ अपनी विद्वत्ता से सर्वत्र प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं जबकि सम्पत्तिशाली एक सीमा में ही प्रतिष्ठा पाते हैं–'विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं।' 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।' विद्या विवेक प्रदान करती है, हेय-उपादेय का ज्ञान कराती है तथा कल्याण पथ का दर्शन कराती है।

दोनों पण्डितों ने राजा से निवेदन किया कि हे राजन्! आपकी पुत्रियों ने रुचि एवं लगन से विविध कलाओं एवं

शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया है। आप इनकी परीक्षा लेकर कृपया हमें सन्तोष का अवसर प्रदान कीजिए।

राजा प्रजापाल ने मुस्कराते हुए अपनी पुत्रियों की ओर देखा और उनकी बुद्धि की परीक्षा करने के लिए एक समस्या-पद रखा– "पुण्येन किं किं लभ्यते?" अर्थात् पुण्य से क्या-क्या प्राप्त होता है?

सुरसुन्दरी का उत्तर था–

रूपं च राज्यं सुभगं सुभर्त्ता, नीरोगगात्रञ्च पवित्रभोज्यम्।
गानं च नृत्यं परिवारपूर्ण, पुण्येन चैतत्सकलं लभेत।।

"पूज्य पितृवर! रूप, राज्य, सौभाग्य, उत्तम पति, निरोग शरीर, पवित्र आहार, गायन, नृत्य और पूर्ण परिवार– ये सब पुण्य से ही प्राप्त होते हैं।"

सम्पूर्ण राजसभा सुरसुन्दरी का यह श्रेष्ठ उत्तर सुन कर प्रसन्न हुई क्योंकि इस उत्तर में सुरसुन्दरी की वही दृष्टि है जो संसारी मनुष्य की है। पुण्य से क्या प्राप्त होता है इसके उत्तर में सुरसुन्दरी की दृष्टि भी लौकिक वैभव पर है, भौतिक सुख-सुविधाओं पर है। केवल बहिरंग पर है, देह पर है। पुण्य की अनेक क्रियाएँ हैं– रोगी की सेवा से पुण्य होता है, भूखे को भोजन कराने से भी पुण्य होता है और अनेक नर-नारियों के पूजा स्थान जिन-मन्दिर बनवाने में भी पुण्य होता है। पुण्य तीनों है परन्तु उनका फल अलग-अलग है। भोजन कराने वाला पुण्य कालान्तर में सुख-सुविधा जुटा देगा, सेवा करने वाला पुण्य समय आने पर शरीर को नीरोग रखने के लिए अनुकूल निमित्त जुटा देगा और जिनमन्दिर बनाने का पुण्य आत्मशुद्धि का मार्ग प्रशस्त करेगा। एक पुण्य सांसारिक सुख का कारणभूत है तो दूसरा आत्मकल्याण का निमित्त है। अपने

विवेक से अपनी दृष्टि से सुरसुन्दरी ने ठीक ही कहा, गलत नहीं कहा, उसकी शिक्षा भी तो इसी तरह की हुई थी जिसमें सांसारिक दृष्टि को ही प्रधानता थी।

शान्त और गम्भीर मदनसुन्दरी ने विनयपूर्वक उत्तर दिया–

शीलं च दक्षं विनयो विवेकः, सद्धर्मगोष्ठिः प्रभुभक्तिपूजा।
अखण्डसौख्यं च प्रसन्नता हि, लभ्येत पुण्येन समस्तमेतत्।।

"पूज्य पिताश्री! शील, दक्षता, विनय, विवेक, उत्तम धर्मसभा, प्रभु-भक्ति पूजा, अखण्ड सौख्य प्रसन्नता – ये सब पुण्य से प्राप्त होते हैं।"

मदनसुन्दरी की दृष्टि सांसारिक सुखों की ओर न होकर अखण्ड सौख्य और प्रसन्नता की ओर है। पुण्य भी वही सार्थक होता है जो अपने शील-स्वभाव की पहचान करा कर विनय और विवेकपूर्वक धर्म सभाओं व प्रभु की पूजा भक्ति के निमित्त जुटाता है और अन्त में अविनाशी सुख प्रदान करता है। संसार के माया, मोह, राग-रंग, विषय कषायों में प्रवृत्ति कराने वाला पुण्य कदापि श्रेयस्कर नहीं; वह पापानुबन्धी पुण्य जीव का अहित करने वाला है।

मदनसुन्दरी पुण्य का फल अखण्ड सुख बताती है। ऐसा सुख जो कभी खण्डित न हो, जिसका कभी विनाश न हो, अवसान न हो। संसार का सारा सुख श्रणिक है नश्वर है, वह सुख नहीं सुखाभास है। इन्द्रियों का सुख, सुख नहीं। प्यास लगी, शीतल पेय पदार्थों से उसे तृप्त किया, कुछ काल के लिए आकुलता टली, थोड़ी देर बाद फिर वही प्यास, वही आकुलता, यह सुख अखण्ड कहाँ रहा! मोही प्राणी अनुकूल पदार्थों का संयोग होने पर सुख और उनका वियोग होने पर दुःख मानता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में यही है कि पर-पदार्थ

मुझे सुख-दुःख देते हैं। जबकि किसी पर-पदार्थ से सुख अथवा दुःख नहीं होता क्योंकि एक ही पदार्थ जिससे कभी सुख मिलता था दूसरे ही क्षण वह दुःखदायी हो जाता है तथा जो एक को दुःख का कारण होता है वही दूसरे के लिए सुख का निमित्त बन जाता है। अतः पर-पदार्थ सुख-दुःख के कर्ता नहीं हैं। सुख आत्मा का स्वभाव है, पुद्गल से पौद्गलिक पदार्थों से सुख की आशा करना दुराशा मात्र है। सुख पराश्रित है ही नहीं। आत्मिक सुख ही सच्चा सुख है, शाश्वत है, अखण्ड है। योगी आनन्दघनजी महाराज ने अपने एक स्तवन में कहा है कि ऐसी प्रीति क्या करनी जो टूट-टूट जाए। मुझे तो ऐसा प्रियतम चाहिए जिसका मुझ से कभी वियोग न हो –

ऋषभ जिनेश्वर प्रियतम माहरो रे, और न चाहूँ रे कन्त।
रीझ्यो साहेब संग न परिहरे रे, भांगे सादि अनन्त।।

वह शाश्वत सुख सादि अर्थात् प्रारम्भ सहित है, सम्पूर्ण कर्मक्षय होने के बाद होता है और एक बार होने के बाद कभी छूटता नहीं, अनन्तकाल तक ज्यों-का-त्यों बना रहता है, वह मोक्षसुख शाश्वत है, चिरन्तन है, "रहिहैं अनन्तानन्तकाल, यथा तथा शिव परिणए।"

मदनसुन्दरी की दृष्टि में लौकिक सुखों का कोई महत्त्व नहीं, वह पुण्य का फल अखण्ड सुख चाहती है जो 'पर' का अवलम्बन लेने से नहीं अपितु 'स्व' का श्रद्धान्, ज्ञान और आचरण करने से प्राप्त होता है।

मदनसुन्दरी के उत्तर की भी सारी सभा ने सराहना की। राजा ने दोनों कन्याओं के ज्ञान पर सन्तोष व्यक्त किया और दोनों पण्डितों को बहुमूल्य वस्त्राभूषणादि उपहार स्वरूप दिये। राजसभा समाप्त हुई। सब अपने-अपने स्थान पर चले गए। *

समय का चक्र निरन्तर प्रवहमान रहता है, कभी रुकता नहीं। प्रजापाल को अब अपनी कन्याओं के विवाह की चिन्ता हुई। स्वाभाविक भी है, कन्या पराया धन कही जाती है; उसे योग्य पति के हाथों में सौंप कर ही माता-पिता सुख-सन्तोष की साँस लेते हैं। एक बार की बात है कि कुरुजाङ्गल प्रदेश की संखपुरी नाम की नगरी का राजकुमार अरिदमन प्रजापाल राजा की सेवा में आया हुआ था। स्वस्थ, सुन्दर, यशस्वी, प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले कुमार को देखकर राजसभा में बैठी सुरसुन्दरी अपना हृदय हार बैठी; उसके हृदय में प्रेम अंकुरित हो उठा। मुखमण्डल विशेष आभा से दीप्त हो गया, आँखें अत्यन्त चंचल हो उठीं। कुमार की भी लगभग यही दशा हुई। दोनों की मनःस्थिति का अनुमान राजा ने लगा लिया।

राजा को तो विवाह की चिन्ता थी ही; उसने सुरसुन्दरी से ही पूछ लिया। सुरसुन्दरी ने अपने मन के भावों को राजा के समक्ष व्यक्त कर दिया। अपना अभिप्राय कह चुकने के बाद सुरसुन्दरी ने इतना और जोड़ दिया कि आगे जैसी आपकी इच्छा हो, वह मुझे स्वीकार है क्योंकि आप मेरे पिता हैं, पालक हैं, पोषक हैं।

राजा ने सुरसुन्दरी और अरिदमन की पारस्परिक अनुरक्ति जानकर विवाह सम्बन्ध निश्चित कर दिया। सुरसुन्दरी की माँ भी बड़ी प्रसन्न हुई, विवाहोत्सव में धूमधाम की कल्पना कर प्रजाजन भी प्रमुदित हुए।

दूसरे दिन प्रजापाल राजा ने उत्साहित होकर अपनी दूसरी पुत्री मदनसुन्दरी से कहा– "मदना! मेरी सेवा में बहुत से राजकुमार आये हुए हैं; बता तुझे कौन-सा राजकुमार प्रिय है, उसी के साथ तेरा विवाह सम्बन्ध कर दूँ।"

राजा के प्रश्न पर विवेकशीला मदनसुन्दरी मौन रही, वह मन ही मन कुछ गूढ़ चिन्तन कर रही थी परन्तु जब राजा बार-बार आग्रहपूर्वक पूछने लगा तो विवश होकर वह बोली– "पूज्य पितृवर! कुलबाला इस सम्बन्ध में स्व-मुख से क्या कह सकती है?" प्रजापाल शासक थे, इतनी बार पूछने पर भी कन्या का यह उत्तर पाकर रुष्ट हुए से बोले– "तो फिर ठीक है। मैं ही निर्णय कर लूँगा और जो कुछ करूँगा, बहुत अच्छा ही करूँगा।"

पिता की इस गर्वोक्ति पर मदना चुप न रह सकी। वह बोली– "पिताश्री! विवाह-प्रसंग में माता-पितादि तो बाह्य निमित्त कारण हैं; अन्तरंग कारण तो अपना कर्मयोग ही है। जैसा कर्म संस्कार होता है, वैसा ही बनता है, अन्यथा नहीं। किसी का किया कुछ नहीं हो सकता। माता-पिता-कुटुम्बीजन तो अच्छा घर-वर देखकर ही सम्बन्ध करते हैं लेकिन कन्या का स्वयं का भाग्य विपरीत हो तो सम्पत्ति भी विपत्ति में बदल जाती है, सुखद परिस्थितियों पर दुःख की घनघोर घटाएँ छा जाती हैं। कभी सामान्य घर-वर प्राप्त होने पर भी सौभाग्य सूर्य ऐसा उदित होता है कि दुःख-दारिद्र्य रूप अन्धकार को नष्ट होते देर नहीं लगती। अतः हे पूज्य पितृवर! जब और जैसा कर्मयोग होगा, वैसी ही बात बन जावेगी।"

मदना के इन वचनों से कर्तृत्व में डूबे राजा के अहं को ठेस लगी। उन्हें क्रोध कषाय ने आ घेरा। अधिक ऊँचे स्वर में वे बोले– "मदना! तुम निरी मूर्खा हो। मैं शासक हूँ, अपनी प्रजा का पालक हूँ, रंक को राजा और राजा को रंक बनाने की शक्ति मुझ में है, मैं ही तुम्हें भी सुख-दुःख देता हूँ, दे सकता हूँ। अच्छा यह बताओ राजभवन में तुम्हें जीवन की जो इतनी

सुख-सुविधाएँ मिली हुई हैं क्या वह मेरी कृपा से नहीं? क्या नित नवीन भोजन, वस्त्राभूषण, मनोरंजनादि की सामग्री का उपयोग तुम मेरी कृपा से नहीं कर रही हो? बोलो! बोलो!"

मदना निर्भीकतापूर्वक बोली– "पिताश्री! यदि आपकी कृपा से ही मुझे सुख मिल रहा है तो राज्य की सभी कन्याओं को ऐसा सुख क्यों नहीं मिल रहा – आप तो प्रजापालक हैं। मैंने अपने पूर्वकृत शुभकर्मों के योग से आपके घर जन्म लिया, उन्हीं शुभकर्मों के योग से मुझे पूर्ण सुख-सुविधा के साधन प्राप्त हुए – आप्त वचन है–

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि भुज्यते तदा, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं स्यात्।।

(जीव ने पहले जैसे शुभ या अशुभ कर्म उपार्जित किए हैं; उन्हीं के अनुसार वह उनका अच्छा-बुरा फल भोगता है। यदि दूसरों द्वारा दिया हुआ फल भोगा जाए तो अपने किए हुए कर्म निरर्थक हो जायेंगे।)

सभा में अपनी ही कन्या द्वारा अपना अपमान होते देख राजा अपने आपे में न रह सके। क्रोध उन पर हावी हो गया। जब-जब क्रोध आता है तो इसलिए कि अहं टूटता है, मन की मान्यता को महत्ता नहीं मिलती। क्रोध कार्य है और मान, माया, लोभ उसके कारण हैं। क्रोध के पीछे इन तीनों में से कोई-न-कोई हेतु अवश्य होता है। यहाँ राजा का मान आहत हुआ था अतः वे विचलित हो उठे थे। बोले– "मदना! हठ छोड़ दे, इस हठ का दुष्परिणाम तुझे भोगना पड़ेगा। मैं तुझे...."

राजा की दुष्कल्पना होठों पर आती इससे पहले ही इस अप्रिय वाद-विवाद को समाप्त करने के लिए अवसरज्ञ सुबुद्धि

मंत्री बोल उठे– "राजन्! इस अबोध बालिका के साथ आप जैसे महान् पुरुषों को विवाद करना शोभा नहीं देता। चलिये, वनक्रीड़ा हेतु पधारिए। सभा में आने से पूर्व आपने अश्व तैयार करने के लिए कहा था, सुसज्जित अश्व हम सबके लिए तैयार हैं।"

समझदार व्यक्ति वे ही होते हैं जो संघर्ष को बढ़ते देखकर बात बदल दे। कितने ही व्यक्ति ऐसी प्रकृति के होते हैं जो चिन्गारी लगी देखकर और फूस डाल कर उसे ज्वाला बना देते हैं। ऐसे प्रसंगों में यदि हमारी वाणी संघर्ष को शान्त कर सकती हो तो उसे ऐसा अवश्य करना चाहिए, अन्यथा वाणी का ऐसा दुरुपयोग नहीं होना चाहिए कि जिससे दिलों में जलती आग और भड़क उठे। मंत्री सुबुद्धि ने अपने विवेक से काम लेकर इस अप्रिय स्थिति का निवारण किया।

मंत्री के निवेदन को सुनकर यद्यपि राजा सभा से उठ खड़े हुए और वनक्रीड़ा के लिए चल दिए तथापि वे अभी तक सहज नहीं हो पाए थे। उनकी विचारसरणि इस प्रसंग से तरंगित थी। *

(२)

राजा प्रजापाल और मंत्री सुबुद्धि अश्वों पर सवार होकर वन प्रदेश में आए, सेवकगण पीछे-पीछे थे। राजा के मन में मदना की हठ ने विचारों का तूफान ला दिया था। वे विचारों की उधेड़बुन में मौन चले जा रहे थे। तभी सामने धूल के बड़े-बड़े बादल उठते दिखाई दिये, कोलाहल सुनाई देने लगा। राजा ने अपना मौन भंग कर मंत्री से पूछा– "अमात्यवर! वनप्रदेश में आज यह कोलाहल कैसा? कितनी धूल उड़ रही है?"

सुबुद्धि बोले– "राजन्! सामने से कुष्ठियों का दल आ रहा है; हमें अपनी दिशा बदल लेनी चाहिए।"

राजा को कुष्ठि-दल के सम्बन्ध में उत्सुकता हुई। उन्होंने इसके सम्बन्ध में कुछ विशेष परिचय देने को मंत्री से कहा, तो मंत्री बोले– "स्वामिन्! कर्मों का फल तो सभी को भोगना ही पड़ता है। इन पुरुषों के शरीर में कोढ़ रोग उत्पन्न हो गया है। इनकी संख्या सात सौ है। उम्बर नामका कोई राजपुत्र इनका राजा है, गलितांगुल नामक मंत्री है, सर्वाङ्गलित नामक कोतवाल है, शेष इनकी प्रजा है। ये सब-के-सब कोढ़ग्रस्त हैं। इनके शरीर की सारी चमड़ी गल रही है, शरीर में फोड़े हो रहे हैं, राध, पीप और खून बह रहा है, कीड़े भी पड़ गए हैं। इनके शरीर से भयंकर बदबू निकलती है, पास में खड़ा भी नहीं रहा जा सकता, खच्चरों पर सवार हुए ये बड़े भयानक दिखाई देते हैं, मानो साक्षात् नरक के नारकी जीव ही आ रहे हों; राजन् इधर चलना ठीक नहीं, हमें अपनी दिशा बदल लेनी चाहिए।"

राजा और मंत्री का यह संवाद चल ही रहा था कि तभी कुष्ठि समूह से एक व्यक्ति इन लोगों की तरफ आया और वह विनयपूर्वक बोला– "हे नरपुंगव! क्या आप मुझे मालवाधीश्वर राजा प्रजापाल के दरबार का मार्ग बताने की कृपा करेंगे?"

सुबुद्धि मंत्री ने थोड़ा पीछे हटते हुए कहा– "क्यों? वहाँ क्यों जाना चाहते हो भाई?" आगन्तुक ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया– "भद्र पुरुष! हम सात सौ कुष्ठियों का एक दल है, मैं उस दल का मंत्री हूँ; मालवाधीश्वर से अपने राजा के लिए कुछ याचना करना चाहते हैं, अतः वहाँ जाना चाहते हैं, कृपया

मार्ग बताकर हमें उपकृत कीजिए।"

अमात्य ने उत्तर दिया– "मंत्रीवर! जिनके दर्शनों के लिए तुम अधीर हो रहे हो, वे ही ये मालवाधीश्वर प्रजापाल भूपाल तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं।"

अमात्य का कथन सुनकर गलितांगुल मन्त्री के हर्ष की सीमा नहीं रही। अपने सौभाग्य पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए वह राजा के चरणों में सिर नवाता हुआ बोला– "प्रभो! जय हो, आपकी सदा जय हो। समय से पूर्व ही दर्शन हुए, आज आपके दर्शन प्राप्त कर हमारा सौभाग्य सूर्य उदित हुआ है। प्रभुवर! आपकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही है, सुना है आप याचक को कभी निराश नहीं करते; स्वामिन्! हमारी भी एक याचना है।" प्रजापाल बोले– "निस्संकोच कहो।"

"राजन! हम सभी क्षत्रिय वंशज हैं; कर्मवश इस प्रकार रोगग्रस्त हो गए हैं। हमारे पास धन-धान्य, सम्पत्ति की कोई कमी नहीं है। हमारे दल में सारी व्यवस्था है परन्तु एक कमी है। हमारा राजा क्षत्रियवंशी उम्बर राणा है। राजा तो है हमारा परन्तु रानी नहीं है। अतः आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि हमारे राजा के लिए आप कोई कन्या देवें। हम जानते हैं कि कोढ़ग्रस्त व्यक्ति को कोई अपनी कन्या नहीं देगा परन्तु राजा हैं, सब याचकों की इच्छाएँ पूरी करने वाले हैं; अतः अपने नगर की कोई कन्या-सामान्य जाति की हो, साधारण रूप वाली हो, निर्धन हो, कैसी भी क्यों न हो– हमारे राजा के लिए देवें। आप प्रतापी नरेन्द्र हैं; आशा है आप हमें निराश नहीं करेंगे।"

राजा बोले– "बन्धुवर! रोगी पुरुष को कोई अपनी कन्या कैसे दे सकता है, तुम इसके अतिरिक्त अन्य जो वस्तु

चाहो सो माँगों, मैं अवश्य दूँगा।"

गलितांगुल बोला– "हे राजन्! हमें अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। आपके पास से खाली हाथ लौटने से आपकी कीर्ति धूमिल हो जाएगी, आपका उज्ज्वल यश मलिन हो जाएगा कि मालवाधिराज एक याचक की सामान्य-सी इच्छा भी पूरी न कर सका। अस्तु, आपका कल्याण हो।" यह कहकर मंत्री लौटने लगा–

तभी राजा के मस्तिष्क में मदना का हठ भरा चेहरा तथा 'अपने भाग्य से ही सब मिलता है' वाक्य उभर आया। उसने तुरन्त निर्णय कर लिया और लौटते हुए गलितांगुल को कहा– "अपने राजा सहित दरबार में उपस्थित होना, तुम्हारी याचना निष्फल नहीं रहेगी।"

राजा का यह कथन सुनकर गलितांगुल प्रसन्न होता हुआ चला गया। राजा ने वनक्रीड़ा के लिए आगे न बढ़कर अपना अश्व राजभवन की ओर मोड़ लिया। मंत्री सुबुद्धि और सेवकगण राजा के पीछे-पीछे हो लिये।

राजा के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान खेलने लगी। उसने मदना का हाथ उम्बर राणा के हाथ में देने का संकल्प कर लिया, यह सोच कर कि उसके ऐसा करने से मदना को अपनी उद्दण्डता और हठधर्मिता का फल मिलेगा। जब हृदय में क्रोध रूप चाण्डाल प्रवेश कर जाता है तब व्यक्ति अपने स्नेहजनों के प्रति भी निर्मम हो जाता है, क्रूर हो जाता है। इसी से तो क्रोधातुर व्यक्ति को क्रोधान्ध कहा जाता है, उसे कुछ दिखाई नहीं, देता; विवेक उसका साथ छोड़ बैठता है वह अकरणीय भी करने में नहीं हिचकता। क्योंकि जब क्रोध होता है तब वात्सल्य नहीं रहता, जब वात्सल्य होता है तब क्रोध नहीं;

मदन ! तुम्हारा भाग्य चला आया है (उम्बरं राणा की ओर संकेत करते हुए) यही है तुम्हारे कर्मयोग का वर।

एक समय में एक ही भाव तो रहेगा। राजा ने क्रोध के वशीभूत हो अपनी प्रिय पुत्री मदना को उम्बर राणा को देने का निर्णय कर लिया।

राजसभा जुड़ी। राजा ने मदना को भी बुलवा लिया। फिर वही प्रश्न किया– "मदना! सच बता तुझे मेरी कृपा से ही सुख-दुःख है या नहीं?" मदना ने फिर वही उत्तर दिया– "पितृवर? मुझे स्व-भाग्य से ही सुख-दुःख है, आपकी कृपा से नहीं। आपकी कृपा से ही बनता हो तो राज्य में कोई भी दुःखी दरिद्री नहीं होना चाहिए!"

तभी द्वारपाल ने आकर उम्बर राणा के आगमन की सूचना दी। राजा ने अपने सेवकों के द्वारा उम्बर राणा को बुलवा कर सभा में बैठाया। सभी सभासद चकित थे, यह कुष्टि सभा में क्यों? सुबुद्धि मन्त्री शायद राजा के मन की बात ताड़ गए थे अतः बहुत व्याकुल दिखाई दे रहे थे। तभी राजा प्रजापाल गुरु गम्भीर स्वर में बोले– "मदना! तुम्हारा भाग्य चला आया है; (उम्बर राणा की ओर संकेत करते हुए) यही है तुम्हारे कर्मयोग का वर।"

मदना बोली– "यदि भाग्य ही चला आया है तो उसका निवारण कौन कर सकता है। मैं सदैव अपने भाग्य का स्वागत करती हूँ।"

उम्बर को सम्बोधित करते हुए प्रजापाल बोले– "उम्बर राणा! यह मेरी कन्या मदनसुन्दरी तुम्हारा स्वागत करती है; यह मैंने तुम्हें दी।"

राजा के इन शब्दों को सुनकर सारी सभा स्तम्भित रह गई। स्वयं उम्बर राणा विचलित होते हुए बोले– "महाराज! कन्या के साथ विवाद कैसा? कहाँ मैं कोढ़ी और कहाँ यह

सुकुमारी? मुझे आपकी कन्या नहीं चाहिए, मैंने तो किसी सामान्य कन्या की याचना की थी आपसे। इनसे मेरा सम्बन्ध उपयुक्त नहीं है।"

पिता का आदेश मान कर मदनसुन्दरी ने बिना किसी घबराहट के उम्बर राणा का हाथ पकड़ लिया और बोली– "पूज्यवर! कर्मफल भोगने में मैं स्वतन्त्र हूँ। जैसा बोया है वैसा ही काटना होता है। जो कर्म बाँधे हैं वे ही तो भोगने हैं।"

मदना के इस साहस को देखकर सारी सभा सहित स्वयं प्रजापाल राजा भी आश्चर्य चकित हो गए। मगर भयावह यथार्थ की कल्पना होते ही अधिकांश सभासदों के हृदय दुःख से और नेत्र अश्रुओं से परिपूर्ण हो गए।

सभा विसर्जित हो गई। जिस किसी भी प्रजाजन ने सुना सबकी एक ही प्रतिक्रिया थी कि अनर्थ हो गया। सबने उम्बर राणा के साथ खच्चर पर बैठी मदनसुन्दरी को जाते हुए देखा।

कोई मदनसुन्दरी को कोस रहा था तो कोई राजा को। कोई मदनसुन्दरी की शिक्षा को दोष दे रहा था तो कोई उसके धर्म को। एक स्त्री कह रही थी राजपुत्री ने हठ करके अच्छा नहीं किया, उसे पिता का अपमान नहीं करना चाहिए था। एक प्रौढ़ा बोली– "अरे यह तो बच्ची है, अबोध है। मुये पण्डित ने इसे ऐसी ही शिक्षा दी है। विनय तो बिल्कुल सिखाया ही नहीं। ढीठता अच्छी नहीं होती।" एक पुरुष बोला– "सारा दोष माँ का है। बच्चों में संस्कार डालने का उत्तरदायित्व माँ का है।"

एक युवती ने सबको झिड़कते हुए कहा– "अरे छोड़ो भी, इसने भले ही जिद कर ली हो लेकिन पिता ने ऐसा करके कौन-सी समझदारी का परिचय दिया, आखिर कैसा हृदय है

राजा का।" भीड़ में कोई कह रहा था– "अरे न राजा का दोष है न राजकुमारी का, इसका धर्म ही ऐसा है जो पिता का उपकार भी नहीं मानना सिखाता है।"

ये सारी प्रतिक्रियाएँ मदनसुन्दरी चुपचाप सुनती चली जा रही थी। उसको किसी पर कोई रोष नहीं था परन्तु जब उसने धर्म की निन्दा सुनी तो उसका हृदय तड़प उठा, उसे तीव्र वेदना हुई मानों कानों में किसी ने पिघला हुआ शीशा ही डाल दिया हो। तन-मन-प्राण वेदना विह्वल हो उठे परन्तु कुछ कहने-सुनने का समय नहीं था। जब उम्बर राणा मदनसुन्दरी के साथ अपने स्थान पर पहुँचे तो कोढ़ियों के दल में हर्ष का पारावार नहीं रहा। उन्होंने सोत्साह समारोह मनाया। उनकी बहुत दिनों की अभिलाषा आज पूरी हुई थी।

नगर में कठोर हृदय पिता प्रजापाल के अविवेक की सर्वत्र चर्चा थी। जहाँ भी लोग परस्पर मिलते, राजा की आलोचना करते; अपनी पुत्री के साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए उसे भला-बुरा कहते। मंत्री ने, सभासदों ने सबने राजा के इस कृत्य को अशोभनीय कहा। अपनी आलोचना राजा के कानों तक भी पहुँची– "मदना नादान है, अबोध है, अभी उसने जीवन और जगत् को देखा ही कहाँ है पर राजा ने तो समझदार होते हुए भी अपनी बुद्धि से काम नहीं लिया। पिता होने के नाते क्या उसे अपनी पुत्री को कोढ़ी के साथ ब्याहना उचित है।" महल और राजभवन सर्वत्र एक मौन निन्दा, भर्त्सना राजा को अनुभव होने लगी। व्यक्ति का चित्त अपनी आलोचना, निन्दा सुनकर विकल हो जाता है, उसके कान सदैव प्रशंसात्मक वचन सुनने को ही आतुर रहते हैं चाहे उसकी करणी प्रशंसा योग्य हो या न हो; क्योंकि उसे यह दुरभिमान रहता है कि उसका

आचरण ही सर्वश्रेष्ठ है। जब उसकी बुराई होने लगती है तो वह उसे नहीं सह पाता, चाहता है कोई ऐसा काम करूँ जिससे यह दोष ढक जाए।

प्रजापाल सोचने लगे – प्रजा की स्मृति चिरजीवी नहीं होती, अतः इस समय यदि मैं कोई ऐसा काम करूँ जिससे प्रजा का ध्यान बँट जाए तो यह आलोचना समाप्त हो जाएगी। उन्होंने सोचा कि यदि सुरसुन्दरी का विवाह बड़े वैभव के साथ सम्पन्न कर दूँ तो प्रजा मेरी प्रशंसा करने लगेगी। उन्होंने तत्काल सेवक भेज कर राज-ज्योतिषी को बुलवाया। राज-ज्योतिषी के आने की प्रतीक्षा में उन्होंने विवाह समारोह की सारी रूपरेखा बना ली।

राज-ज्योतिषी ने आकर राजा को आशीर्वाद दिया। अपना प्रणाम निवेदन करने के बाद राजा बोले– "ज्योतिषीजी! सुरसुन्दरी के विवाह का कोई शुभ मुहूर्त तो निकालिए, जल्दी ही; पाँच-दस दिनों में ही मैं उसका विवाह अरिदमन कुमार के साथ बड़ी शान से करना चाहता हूँ।"

ज्योतिषी कुछ देर तक अपनी गणना करते रहे परन्तु उनकी समझ में सुरसुन्दरी के विवाह का कोई शुभ मुहूर्त नहीं बैठा। निराश होकर राजा से बोले– "राजन्! अब ऐसा कोई मुहूर्त नहीं है जिसमें कन्या का विवाह सम्पन्न हो सके। इन दिनों में श्रेष्ठ मुहूर्त तो वही था जब मदनसुन्दरी ने उम्बर राणा श्रीपाल का हाथ पकड़ा था।" यह कह ज्योतिषी चुप हो गए।

राजा अपनी सारी योजना यों ही व्यर्थ होते देख बड़ा व्यग्र हो उठा। उसने ज्योतिषीजी से फिर आग्रह किया– "महाराज! मुहूर्त तो निकालना ही होगा।"

राजा को अत्यन्त व्यग्र देखकर ज्योतिषीजी बोले– "राजन! सुरसुन्दरी के ब्याह की इतनी शीघ्रता क्यों है? कोई श्रेष्ठ मुहूर्त तो है नहीं।"

राजा ने फिर अनुनय की तो ज्योतिषीजी ने कहा– "आपके सन्तोष के लिए भले ही मुहूर्त निकाल दूँ पर मेरे सन्तोष के लिए तो कोई श्रेष्ठ मुहूर्त नहीं बनता है।" ज्योतिषीजी ने एक अनबनता मुहूर्त राजा को बता दिया।

विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। नगर सजाया गया। महलों में शहनाइयाँ गूंजने लगीं, तोरण वन्दनवार बाँधे गए। चारों ओर खुशी की लहर दौड़ गई। अरिदमन कुमार और सुरसुन्दरी का विवाह बड़ी धूमधाम से पूर्ण वैभव के साथ सम्पन्न हुआ। राजा ने अपनी कन्या के लिए दहेज में सभी प्रकार की विपुल सामग्री दी।

विवाह की साज-सजावट और राजा द्वारा प्रदत्त वैभव नागरिकों की चर्चा का विषय बना। सबने फिर मदनसुन्दरी की नादानी को ही बुरा बताया, राजा की उदारता सर्वत्र प्रशंसित हुई। राजा मन-ही-मन फूले न समाये।

जब मान कषाय को पुष्टि मिलती है तो हृदय में आनन्द छा जाता है। यदि किसी का मन अपनी प्रशंसा सुनकर भी प्रभावित नहीं होता तो समझना चाहिए कि यह मानव नहीं महामानव है। नागरिकों से प्रशंसा पाकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। आज अपनी सफलता-असफलता, अच्छाई-बुराई का मापदण्ड हमने भी तो यही बना रखा है। दस-बीस व्यक्तियों ने बुरा कह दिया तो हम बुरा मान लेते हैं और अच्छा कह दिया तो अपने आप को अच्छा समझ लेते हैं। अपने विवेक से अच्छे-बुरे का निर्णय नहीं करते, यों दस-बीस आदमी तो

हर अच्छे को बुरा और हर बुरे को अच्छा कहने वाले मिल ही जाते हैं।

अरिदमन कुमार कुछ दिनों तक अपने ससुराल में ही रहा। फिर राजा तथा प्रजा ने सुरसुन्दरी और कुमार को विदा दी। कई मील की लम्बी यात्रा के बाद कुमार, सुरसुन्दरी अपने परिजनों सहित शंखपुरी के समीपस्थ उद्यान में पहुँचे। लम्बी यात्रा की थकान दूर करने के निमित्तकुमार और सुरसुन्दरी थोड़े-से लोगों के साथ उसी उद्यान में ठहर गए। शेष लोग नगर समीप जानकर अपने प्रियजनों से मिलने के उत्साह से कुमार की आज्ञा लेकर नगर में चले गए। *

(३)

अपने दल के लोगों द्वारा स्वागत-अभिनन्दन के बाद उम्बर राणा श्रीपाल मदनसुन्दरी को अपने शिविर में ले गया। सारे आयोजन में राणा मदनसुन्दरी की मनःस्थिति को तौलने का प्रयत्न करता रहा परन्तु उसे कृत्रिमता का लेश भी दिखाई नहीं दिया। मदनसुन्दरी बिल्कुल सहज थी। उसके मुखमण्डल पर कहीं चिन्ता, घृणा, विरक्ति, ऊब, उकताहट, परेशानी की झलक भी दिखाई नहीं दी। उसके होठों पर वही मन्द स्मित, आँखों में आह्लाद, स्नेह और सेवा भावना का प्रकाश – मन में दृढ़ विश्वास जो है कि जो कुछ मिल रहा है, अपने ही अच्छे-बुरे कर्मों का फल तो मिल रहा है फिर किसी से शिकायत क्यों! कुष्ठिदल अपनी रानी की भावभंगिमा देख कर आश्चर्यचकित है कि यह मानवी है या कोई देवी?

शिविर में पहुँच कर उम्बर राणा ने मदनसुन्दरी से अपने मन की उथल-पुथल, हलचल इस प्रकार व्यक्त की– "हे सुन्दरी! तुम्हारे पिता ने उचित नहीं किया। कहाँ मैं कोढ़ी

और कहाँ तुम सुन्दर, स्वस्थ रूपवती। तुमने भी 'कर्मवाद' में आकर मेरा कर-स्पर्श कर लिया; मेरा शरीर भीषण कोढ़ से ग्रस्त है, अब भी कुछ विशेष अनिष्ट नहीं। हुआ है; तुम चाहो तो किसी अन्य योग्य पुरुष के साथ अपना सम्बन्ध कर लो; मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

पति के इन असह्य दुःखद वचनों को सुनकर मदनसुन्दरी ने अपने दोनों हाथों से दोनों कान बन्द कर लिये; वह वेदना – इस वेदना – से तड़प उठी। राणा के चरणों में गिरते हुए उसने निवेदन किया– "प्राणनाथ! प्राणों को कुचलने वाले इन कठोर वचनों को सुनने का सामर्थ्य इन कानों में नहीं है। इस भव में तो आप ही मेरे स्वामी हैं, पति हैं; आर्य ललनाएँ जिसको एक बार पति मान लेती हैं फिर अपने शील से नहीं डिगती, चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए। कदाचित् सूर्य पश्चिम में उगने लगे, समुद्र भी अपनी मर्यादा छोड़ दे और भी अनहोनी बातें होने लगे तो भी मैं अपने शीलव्रत से विचलित नहीं हो सकती; किसी की भी शक्ति नहीं जो मुझे विचलित कर सके। हे प्रियतम! भविष्य में इस प्रकार के हृदय विदारक शब्द अपनी जिह्वा पर कभी न लावें। मैंने जो किया है दृढ़ आस्था और विश्वास के साथ किया है, क्रोधावेश में नहीं। मैं इन चरणों में अपना जीवन अर्पित कर चुकी हूँ अब अन्य पुरुष की कल्पना भी जघन्यतम अपराध है।"

मदनसुन्दरी के इन वचनों से उम्बर राणा श्रीपाल को बहुत सन्तोष हुआ। उन्होंने मन-ही-मन मदना जैसी पत्नी पाकर अपने आप को बड़ा भाग्यशाली समझा। रात्रि में दम्पति सानन्द सो गये।

*

प्राची दिशा में ऊषा की लालिमा छाने लगी। अरुणोदय

होने को था। वृक्षों पर पक्षीवृन्द चहकने लगे, पुष्प खिलने लगे, मुर्गे अपनी आवाज से निद्राधीनों को जाग्रत करने लगे, मन्दिरों के घण्टे निनाद करने लगे। प्रभु स्मरण करते हुए मदनसुन्दरी ने शय्या का परित्याग किया। उम्बर राणा के चरणों में प्रणाम करने के बाद विनयपूर्वक बोली– "स्वामिन्! नित्यकर्म से शीघ्र निवृत्त हो लीजिए। नगर के बाहर जिन प्रासाद है; इस पवित्र प्रभात बेला में आत्मशुद्धि हेतु प्रभु दर्शनों के लिए चलना है।" अपनी प्रिया के इन मधुर वचनों को सुनकर उम्बर राणा बहुत प्रसन्न हुआ। शीघ्र ही प्रातःकालीन आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो अक्षत, पुष्पादि पूजा की सामग्री लेकर दोनों पति-पत्नी जिनालय में पहुँचे। दोनों ने प्रभु को सादर नमन किया; मदनसुन्दरी भावपूर्वक स्तुति करने लगी–

"हे जगत् पूज्य! हे जगदीश्वर! हे परम प्रभु! हे त्रिलोकीनाथ! हे देवाधिदेव! आप कर्मजन्य बाधाओं से सर्वथा रहित हैं, आधि-व्याधि-उपाधि से सर्वथा मुक्त हैं, जन्म-जरा-मत्यु के विजेता हैं, सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं, हितोपदेशी हैं, धर्म का स्वरूप समझाने वाले हैं, मोक्षमार्ग के नेता हैं, धर्मचक्र के प्रवर्तक श्रेष्ठ चक्रवर्ती हैं, तरण-तारण हैं, स्वयंबुद्ध हैं, दूसरों को बोध कराने वाले हैं।

"हे भगवन्! मैं कर्मसंयोगी आत्मा अनन्तकाल से भव अटवी में भटक रही हूँ। हे नाथ! आप द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धारण कर मैं भी अठारह दोषों से रहित बन जाऊँ, कर्म-कलंक को नष्ट कर शुद्ध स्वरूप में आ जाऊँ, रागद्वेष को नष्ट कर आप सःदृश वीतराग बन जाऊँ–ऐसी शक्ति दो प्रभो!"

उम्बर राणा अपनी प्रिया के इस भावपूर्ण प्रभु-स्तवन को एकाग्र-मन से सुन रहे थे। मदना की प्रार्थना में कहीं कोई याचना नहीं, कामना नहीं, रोष नहीं, शिकायत नहीं। प्रभु से यह नहीं कह रही कि प्रभो! आप मेरे पति को स्वस्थ कर दो, मेरे दुःख दूर कर दो या हे परम दयालु! मैंने आपकी इतनी सेवा-पूजा-उपासना भक्ति की, उसका यही फल मुझे प्राप्त होना था। प्रभु-वन्दना में न याचना न शिकायत। एक अनहोनी घटना जीवन में घटित होने के बाद भी कोई विकल्प नहीं, व्याकुलता नहीं, चिन्ता नहीं। सुख और दुःख के अतिरेक में प्रायः सामान्य मन अतिशय चंचल हो उठता है लेकिन विवेकशीला, दृढ़ आस्थावान मदना के हृदय पर कोई प्रभाव नहीं।

मदना की धर्मनिष्ठा, तत्त्व-रुचि, श्रद्धा, भक्ति समर्पण की भावना और इन्द्रिय-अनासक्ति को देखकर शासन देवी चक्रेश्वरी बहुत प्रसन्न हुई। मदना ने अनुभव किया कि प्रभु के हाथ में रहा बिजोरा तथा गले की माला हिल रहे हैं। तुरन्त पति को संकेत किया – उसी क्षण हाथ बढ़ा श्रीपाल ने बिजोरा और मदना ने माला ग्रहण कर ली। पुनः प्रभु को अभिवन्दन किया।

वीतराग के यहाँ चमत्कार? असम्भव! असम्भव!! असम्भव!!! चमत्कार तो रागी के ही होता है, वीतरागी के नहीं। रागद्वेष से रहित प्रभु न किसी पर तुष्ट होते हैं और न किसी से रुष्ट – परन्तु 'वीतराग के रागी' देव रुष्ट-तुष्ट होते हैं। जब-जब, जहाँ-जहाँ इस प्रकार के चमत्कार देखे या सुने जाते हैं उसमें वीतराग भगवान् कारण नहीं है अपितु उनके भक्त शासनदेव अथवा अधिष्ठायक देव कारण होते हैं। जब वे अपने आराध्य के उपासक को श्रद्धाभक्ति से परिपूर्ण देखते

हैं तो उनके मन में साधर्मी वात्सल्य भाव जाग्रत हो जाता है और वे प्रसन्न होकर भक्त के कार्यों में उसके सहायक बन जाते हैं। भक्त के पुण्य का उदय हो तो कार्यसिद्धि हो जाती है। देवगति भी चार गतियों में से एक गति है, संसार अवस्था है, सराग अवस्था है, कषायरहित गति नहीं है। शासन देवी चक्रेश्वरी मदनसुन्दरी की धर्मनिष्ठा, तत्त्वश्रद्धान, सम्यग्ज्ञान और तदनुरूप आचरण को देख कर अतीव प्रसन्न हुई और फलस्वरूप उनके मन में मदना के प्रति वात्सल्य उमड़ उठा। मदनसुन्दरी ने जिनाज्ञा पर अटल श्रद्धान रख कर पिता का कोप भी सहन किया; राजकीय सुख- वैभव को बिना किसी आपत्ति के जीर्ण तृणवत् त्याग दिया। जिस जीव के हृदय में धर्म निवास करता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं–

धम्मो मङ्गल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

प्रभुवन्दना के बाद मदना और श्रीपाल दोनों गुरु वन्दनार्थ उपाश्रय में आए। मदना को गृहस्थोचित षट् कर्त्तव्यों का पूर्ण विचार था और वह उन्हें यथाशक्ति सम्पन्न भी करती थी।

देवपूजा गुरुपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने दिने।।

देवपूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये गृहस्थ के षट्कर्म हैं; प्रत्येक गृहस्थ को यथाशक्ति यथासम्भव इन्हें प्रतिदिन करना चाहिए।

उपाश्रय में आकर उन्होंने मुनिराज की सविधि-सविनय वन्दना की। महाराजश्री का व्याख्यान चल रहा था–

धर्मात्सुखं दुःखक्षयं हि याति, धर्मेण राज्यं सुकुलोद्भवः स्यात्।
धर्मस्य सेवा सफला सदैव, धर्मे प्रयत्नो मनुजैर्विधेयः।।

धर्म से सुख की प्राप्ति और दुःख का नाश होता है, धर्म से राज्य वैभव मिलता है, सत्कुल में जन्म होता है; धर्म की सेवा सदैव सफल होती है : अतः सभी मनुष्य को धर्म में प्रवृत्ति करनी चाहिए; अधर्म में, पाप में नहीं।

धर्मदेशना श्रवण कर श्रोता समुदाय बिखर गया। *मदनसुन्दरी ने आगे बढ़कर मुनिराज की वन्दना करते हुए* उनसे सुख-पृच्छा की। मुनि भगवन्त की दृष्टि मदनसुन्दरी के पास बैठे उम्बर राणा श्रीपाल पर पड़ी तो उन्होंने पूछा– "हे मदने! तुम्हारे पास बैठा यह शुभ-लक्षणों वाला पुरुष कौन है?" महाराजश्री के ऐसा पूछने पर मदना ने अपनी सारी कहानी संक्षेप में निवेदन कर दी और अन्त में बोली– "गुरुदेव! मुझे किसी प्रकार का कोई दुःख नहीं है। जो कुछ मुझे मिला है वह मेरे ही पूर्वकृत पुरुषार्थ का फल है। किन्तु दुःख है तो इतना ही कि नगर के लोग पवित्र जैनधर्म की निन्दा करते हैं; यह बात मुझे असह्य है। अतः ऐसा कोई उपाय बताइए कि जिससे लोगों के मन में जैनधर्म के प्रति श्रद्धा के भाव जाग्रत हों, निन्दा के दूर हों। सब यह कहें कि–नहीं, मदना का धर्म श्रेष्ठ है, मंगलमय है।"

परमोपकारी गुरुदेव ने बताया कि हे मदने! तू अपने पति सहित आत्मशुद्धि विधायक, मोक्षपद दाता 'नवपद' की आराधना कर, जिससे जिनधर्म की अभूतपूर्व प्रभावना होगी और तेरा अभिलषित भी पूर्ण होगा। वे नवपद हैं–

(१) अर्हत्पद एवं (२) सिद्धपद साध्य हैं; (३) आचार्यपद, (४) उपाध्यायपद और (५) साधुपद साधक हैं तथा (६) दर्शनपद, (७) ज्ञानपद, (८) चारित्रपद, (९) तपपद साधन हैं। इन साधनों की सहायता से साधक स्वयं

साध्यपद प्राप्त करता है। ये नवपद जीव को सदा सुख देने वाले हैं और उसका कल्याण करने वाले हैं।

नौ दिनों तक जिनेश्वर भगवंत की भक्ति करके एक-एक पद की आराधना करते हुए, नौ दिन तक एकमात्र एक ही अन्न वह भी घी, तेल, दूध, दही, नमक बिना का एक ही समय गर्म जल के साथ लेना होता है।

परमोपकारी गुरुदेव के हितकारी वचनों को उम्बर राणा और मदनसुन्दरी ने सादर शिरोधार्य किया। श्रद्धालु श्रावकों ने स्वधर्मियों की भक्ति स्वरूप उनसे अतिथिशाला में विराजने की प्रार्थना की।

अन्नोन्नदेस जाया, अन्नोन्नाहार वड्ढिय सरीरा।
जे जिणधम्मपवन्ना, सव्वे ते बंधवा भणिया।।

भिन्न देश में जन्म लेने वाले और अलग आहार से पलने वाले भी यदि जिनधर्म को स्वीकार करते हैं तो वे बान्धव हैं।

श्रावकों ने मदनसुन्दरी और उम्बर राणा की सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी। दोनों पति-पत्नी प्रतिदिन सेवा, पूजा और प्रवचन श्रवण का लाभ लेने लगे। *

जीवन में चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। काम और अर्थ भी पुरुषार्थ हैं, महान् पुरुषार्थ हैं, बड़े प्रेरक पुरुषार्थ हैं; जीवन के लिए पोषक पुरुषार्थ हैं परन्तु ये स्वैर दौड़ने वाले पुरुषार्थ हैं? ये पुरुषार्थ कब विचारहीन हो जायेंगे इसका कोई ठिकाना नहीं रहता। अतः इनकी लगाम आठों पहर धर्म के हाथ में रहनी चाहिए।

नवदम्पति की दिनचर्या धर्म-ध्यानपूर्वक व्यतीत हो रही थी। आश्विन का मंगलमय मास विशेष सन्देश लिये आ पहुँचा। गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट नवपदाराधना सोत्साह सम्पन्न

करनी थी। जिन-प्रासाद में सिद्धचक्र यन्त्र की स्थापना की गई और आश्विन शुक्ला सप्तमी के दिन से नवपदाराधना प्रारम्भ हुई। दोनों पति-पत्नी प्रतिदिन स्नात्र पूजा, अष्टप्रकारी पूजा सहित आयम्बिल तप करने लगे। यथाशक्ति जप, तप, माला, सामायिक, स्वाध्याय में ही उनका समय बीतने लगा। मदनसुन्दरी देवाधिदेव भगवान् आदिनाथ एवं परम पवित्र सिद्धचक्र के यन्त्र का स्नात्र जल लेकर प्रतिदिन उम्बर राणा की देह पर लगाती। पुण्योदय से असाता वेदनीय कर्म शान्त होने लगा और पहले दिन से ही उम्बर राणा का रोग शमन होने लगा। दिन-प्रतिदिन विशेष शान्ति होती गई। यों आठ दिन बीत गए। नौवां दिन आया, आज आराधना का अन्तिम दिन था। दोनों पति-पत्नी ने अति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पंचामृत से विस्तारपूर्वक पूजन कर भगवान् की भावपूर्ण स्तुति की। बाद में मदना ने परम पवित्र स्नात्र जल लेकर पति की देह में लगाया जिससे रहा-सहा रोग भी समाप्त हो गया और उम्बर राणा का शरीर पूर्ण स्वस्थ, निर्मल एवं उज्ज्वल हो गया।

यह पवित्र स्नात्र-जल लेकर आज मदनसुन्दरी शिविरों में भी आई जहाँ शेष कुष्ठी रह रहे थे। अपने मन में परम वीतराग प्रभु का स्मरण करते हुए उसने वह पवित्र जल सभी के शरीर पर छिड़का। पुण्य योग से सभी को लाभ हुआ सबके शरीर रोगमुक्त हो गए।

सारे नगर में मदना की जिनभक्ति की और जैनधर्म की प्रशंसा होने लगी। मदना और उम्बर राणा प्रभु दर्शन-वन्दन करने के बाद गुरु महाराज के समीप आए। दोनों ने गुरुदेव की वन्दना की। तब मदना बोली– "प्रभो! आपके मार्गदर्शन से मैं उपकृत हुई हूँ। आज सर्वत्र जिनधर्म की प्रशंसा हो रही

है। आज मेरे संतप्त हृदय को शान्ति मिली है। मेरे पति और इनके साथियों का भी असाताकर्म शान्त हुआ है और अब सब रोगमुक्त हुए हैं। हे स्वामिन्! आपने 'नवपदाराधना' की प्रेरणा की जिससे मेरा अभिलषित पूर्ण हुआ।"

इस प्रकार स्तुति कर दोनों प्रसन्नतापूर्वक अपने शिविर में आए।

तो क्या नवपदाराधना का बस यही फल है कि आराधक शारीरिक रोगों से मुक्त हो जाए? मदना और उम्बर राणा की भावपूर्ण आराधना से उम्बर राणा एवं उनके साथी कुष्ठियों का रोगशमन हुआ– क्या बस पूजा का यही फल है? नवपदाराधना आत्मशुद्धि के आलंबन है। इसमें उनका स्मरण है, अर्चन है, वन्दन है जिन्होंने अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर लिया है अथवा जो इस साधना में सर्वतोभावेन संलग्न है। अतः लक्ष्य तो है वीतरागता की उपासना कर पूर्ण वीतराग बनने का – किन्तु जो व्यक्ति सूर्य के सम्मुख खड़ा है उसके पीछे छाया तो स्वतः खड़ी है। इसी प्रकार जो पुनीत भावों से धर्माराधना में संलग्न है उसे पुण्य-बन्ध तो हो ही रहा है, जबकि उसकी आकांक्षा नहीं। उम्बर राणा एवं मदना ने गुरुदेव की प्रेरणा से भावोल्लासपूर्वक आराधना एवं तपश्चर्या की थी, उससे आत्मशुद्धि तो हुई ही साथ ही प्रबल पुण्योदय से बाह्य में भी सुख-साता समुपस्थित हुई। लौकिक सुख और दुःख ये तो पुण्य-पाप के अनुसर्ता हैं; मुक्तिसुख इन दोनों से परे है। *

(४)

उम्बर राणा और मदनसुन्दरी का दाम्पत्य जीवन गृहस्थोचित कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए बीत रहा था। मगर

गृहस्थ जीवन में निर्द्वन्द्वता कहाँ? अनेक प्रकार की आकुलताएँ रात-दिन लगी रहती हैं। राणा को अपनी माता की स्मृति बेचैन करने लगी जो उसे कुछ समय पूर्व कोढ़ी दल में छोड़कर रोग की औषध लाने के लिए कौशाम्बी चली गई थी। एक दिन जिनालय की वन्दना हेतु जाते हुए इस सुन्दर जोड़े (दम्पति–राणा और मदना) को देखकर एक गम्भीर प्रौढ़ा स्त्री मार्ग में ठिठक गई। मदना के संकेत पर जब राणा की दृष्टि उस स्त्री पर पड़ी तो उसके विस्मय का पार नहीं रहा। उसका मन अत्यन्त प्रमुदित हो उठा; चिन्ता के सारे बादल छिन्न-भिन्न हो गए और मुखमण्डल तेज से दीप्तिमान हो उठा। वह अविलम्ब अपनी माता के चरणों में गिर पड़ा। बिछड़े माँ-बेटे का पुण्य योग से आज मिलन हुआ। मदना ने अपनी सास के चरण स्पर्श किए, सास ने आशीर्वाद दिया। वहीं खड़े-खड़े उम्बर राणा ने प्रश्न किया– "हे मात! तुम इतने दिनों तक कहाँ रही?" माता कमलप्रभा ने बताया कि "हे पुत्र! तुम्हें कुष्ठ रोग हो गया था, मैं तुम्हारे लिए औषधि की व्यवस्था करने कौशाम्बी नगरी गई थी। राजवैद्य के यात्रा पर गए होने के कारण मुझे इतने दिनों तक वहीं रुकना पड़ा। कुछ दिनों पूर्व जिनालय में प्रभु वन्दना करने के बाद जब मैं गुरु-वन्दना हेतु उपाश्रय में गई तो वन्दना के बाद गुरुदेव ने मुझे चिन्तित और भयभीत जानकर अपनी चिन्ता का कारण पूछा। मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में निवेदन किया तब गुरुदेव ने अपने ज्ञानबल से मुझे तुम्हारा सारा वृत्तान्त अवगत कराया और उनकी सूचनानुसार तुमसे भेंट करने मैं यहाँ चली आई। इस प्रकार तुम से और मदना से मिलन हुआ।" तीनों प्रसन्नतापूर्वक प्रभु वन्दना हेतु जिनालय में गए। अपने पुत्र और पुत्रवधू की

जिनेन्द्र-भक्ति देखकर माँ के हर्ष का पारावार न रहा। उसकी आँखों से प्रसन्नता के मोती टपक पड़े। *

आज पर्व का कोई विशेष दिन था। राजा प्रजापाल की रानी, मदनसुन्दरी की जननी रूपसुन्दरी ने क्षेत्र के सभी जिनालयों की वन्दना करने का विचार किया। रथ पर आरूढ़ हो वह दो-तीन जिनालयों की वन्दना करने के बाद नगर के बाहर स्थित उस जिन प्रासाद में पहुँची जहाँ मदनसुन्दरी और उसके पति तथा सास प्रति-दिन देवदर्शन हेतु आया करते थे। ज्योंही रूपसुन्दरी ने जिनालय में प्रवेश किया उसकी दृष्टि मुख्य बेदी पर पूजारत मदनसुन्दरी पर पड़ी। अपनी पुत्री को पहचानने में तो उसकी आँखों ने विलम्ब नहीं किया किन्तु मदनसुन्दरी के पास बैठे सुन्दर स्वरूप नीरोग युवक को देख कर माँ का मन शंकाकुल हो गया – उसके मन में विचारों का वात्याचक्र चलने लगा– "अहो! मेरी कोख से उत्पन्न मदना इतना अनुचित; निन्द्य कर्म तो नहीं कर सकती··· पर··· कहीं कोढ़ी पति से घबराकर इसने नवीन स्वछन्द सम्बन्ध तो नहीं कर लिया? कहीं इसने अपने विवेक को तो तिलांजलि नहीं दे दी···" रूपसुन्दरी का मन विविध कल्पनाओं से कलपने लगा। अन्तस् की पीड़ा सिसकियों में फूट पड़ी; दर्शन में बाधा आ पड़ी; रुदन का स्वर सुनकर पूजा में तल्लीन मदनसुन्दरी का ध्यान भी विचलित हुआ। वह अपनी जननी की वेदना का कारण शीघ्र समझ गई। धीरतापूर्वक उसने चैत्यवन्दन पूर्ण किया; फिर अपने पति एवं सास के संग बाहर आकर उसने अपनी माता को बुलवाया। उसने माँ से कहा– "प्रिय माँ! आप क्यों व्यर्थ के संकल्प-विकल्प कर अपने आप को दुःखी कर रही हैं? क्या आपको अपनी पुत्री पर विश्वास नहीं है?

हे माता! आपकी पुत्री कभी कोई अनुचित कार्य करने का दुस्साहस नहीं कर सकती।...'' मदना को बीच में ही टोक कर उसकी सास ने रूपसुन्दरी को जुहार किया। तब रूपसुन्दरी उन सबको अपने रथ की ओर खींच लाई। कमलप्रभा ने मदना और उम्बर राणा की नवपदाराधना के सम्बन्ध में विस्तार से बातें कीं और मदनसुन्दरी के गुणों की बहुत प्रशंसा की जिसे सुनकर रूपसुन्दरी का मुरझाया मुखमंडल खिल उठा। तब उसने बहुत संकोचवश कमलप्रभा से कुमार के वंशादि के सम्बन्ध में जिज्ञासा की।

कमलप्रभा की आँखों में चलचित्र की भाँति अतीत उतर आया।

वह राजसी वैभव में पलने वाला कुमार श्रीपाल! चम्पापुरी का राजकुमार! सिंहरथ राजा और कमलप्रभा रानी का इकलौता लाल! अभी दो ही वर्ष तो बीते थे; मुस्काते अधरों की मीठी-मीठी तोतली वाणी सुनकर माँ बलैयाँ लेते थकती ही नहीं थी, दास-दासियों की कतार जिसकी सेवा में खड़ी रहती थी, उस पुण्यशाली बालक पर भी दुर्दैव की छाया पड़नी प्रारम्भ हो गयी। सर्व-प्रथम उसे पितृस्नेह से वंचित होना पड़ा, मतिसागर मंत्री की स्वामीभक्ति से बालक का राज्याभिषेक कर दिया गया। दो-तीन वर्ष ही बीते थे, अभी पितृवियोगजन्य आँसू सूखे भी नहीं थे कि दूसरा वज्रपात हुआ– काका अजितसेन ने राज्य हड़पने के लिए षड्यंत्र रचा। उसके मन में सत्ता और सम्पत्ति को पाने की लालसा जाग उठी। अनधिकार चेष्टा के लिए मन-प्राण तैयार हो गए; हृदय में कलुषता ने साम्राज्य जमा लिया। अतः करुणा और विवेक आदि सद्गुणों ने स्थान छोड़ दिया। राज्यलिप्सा ने

काका को लोभान्ध बना दिया, विवेकशून्य कर दिया।

शास्त्रों में कई प्रकार के अन्ध मनुष्य बताए हैं– जन्मान्ध, कामान्ध, मदान्ध, मोहान्ध आदि आदि। इन सबमें अपेक्षाकृत जन्मान्ध अच्छा कहा जा सकता है क्योंकि भले ही वह बाहर की दुनिया को नहीं देख सकता परन्तु अन्तर्जगत् का विश्लेषण तो कर सकता है। अन्य अंध पुरुष बाह्य जगत् तो देखते हैं लेकिन अन्तर्जगत् को देखने का विवेक-प्रकाश खो बैठते हैं। लोभान्ध को भले ही सारी पृथ्वी की सम्पत्ति, राज्यादि-वैभव क्यों न मिल जाए फिर भी उसकी तृष्णा नहीं घटती–

सुवण्णरुप्पस्स उ पव्वया भवे, सिआ हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेही किंचि, इच्छा हु आगास समा अणंतिया।।

सोने और चाँदी के कदाचित् कैलाश पर्वत जितने असंख्य पर्वत मिल जाएँ तो भी लोभी मनुष्य को तृप्ति नहीं होती क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

काका अजितसेन राज्य प्राप्ति के लोभ में इतने निमग्न हो गए कि यह भी भूल गए कि श्रीपाल कुमार कौन है? वे अपने भाई की एकमात्र होनहार संतान की मृत्यु के लिए जाल फैलाने लगे। यह भी नहीं सोच पाए कि जिनके चरणों में दुनिया झुकती थी, सहस्त्रों मुकुटबद्ध राजा जिनके चरणों में नमन करते थे ऐसे षट्खण्डाधिपति, त्रिखण्डाधिपति चक्री-अर्धचक्री भी आज नहीं रहे! किसका धन, किसका वैभव, किसकी भूमि और किसका राज्य साथ में गया? अत्याचार करने वाले, दूसरों को पीड़ित करने वाले, दूसरों के प्राणों से खेलने वाले क्या स्वयं भी मौत की फाँसी से बच सके? संग्रह, अधिकार सब यहीं रह जाता है, जीव के साथ उसके कर्म ही जाते हैं–

राणी कमल प्रभा कुमार श्री पाल को
लेकर गुप्त मार्ग से निकल गई।

धनानि भूमौ, पशवश्चगोष्ठे, भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः।।

यह जीव अकेला ही इस संसार में आया है और अकेला ही जावेगा–"जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुःख का भोगी"। धन-सम्पत्ति जो कुछ उसके पास है वह जहाँ है वहीं रह जावेगी, धन जमीन में गाड़ रखा है तो वहीं पड़ा रह जावेगा। वह एक इंच भी साथ नहीं ले चल सकता, पशु-सम्पत्ति–हाथी, घोड़े, गाय, बैल बाड़े में ही बँधे रह जावेंगे, वे भी साथ नहीं चलेंगे। पत्नी अधिक से अधिक घर की देहरी तक आ जायगी और पुरजन-परिजन श्मसान भूमि तक साथ निभा देंगे और यह शरीर चिता पर साथ चढ़ जाएगा परन्तु परलोक के मार्ग में तो कर्मों से प्रेरित हुए जीव को एकाकी ही जाना होगा।

तेज तुरंग सुरंग भले रथ, मत्त मतंग उतंग खरे ही,
दास खवास अवास अटा धन, जोर करोरन कोष भरे ही।
ऐसे भयो तो कहा भयो हे नर! छोर चले उठ अन्त छरे ही,
धाम खरे रहे, काम परे रहे, दाम गड़े रहे, ठाम घरे ही।।

काका ने यह भी विचार नहीं किया कि सब कुछ मुझे भी यहीं छोड़ कर जाना है। यह सोचने का विवेक ही नहीं रहा। विवेकभ्रष्ट अजितसेन की कुचालों को देख कर मंत्री मतिसागर ने कुमार के प्राणों की रक्षा के लिए रानी कमलप्रभा को कुमार को लेकर गुप्त रूप से शीघ्र राज्य से बाहर भाग जाने की सलाह देते हुए कहा– यहाँ क्षण भर रुकना भी खतरे से खाली नहीं है। मंत्री के परामर्श से रानी कमलप्रभा कुमार श्रीपाल को लेकर गुप्त मार्ग से निकल गई। चलते-चलते एक निर्जन वन प्रदेश में जा पहुँची। राजमहल में सदैव दास-दासियों से घिरी रहने वाली वह कोमलांगी रानी अपने पुत्र को साथ लिये

एकाकी पैदल चलती जा रही है। जिसने कभी बिना सवारी के महल के बाहर कदम भी नहीं रखा था। जो सहस्त्रों की सहारा थी, वही आज स्वयं असहाय बनी हुई है। कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। जब पाप कर्म का उदय आता है तब सारी सम्पदायें भी विपदाओं में बदल जाती हैं, अपने भी बेगाने हो जाते हैं। जो कर्म इस जीव ने बाँधा है, उसका फल तो उसे एकाकी ही भोगना पड़ता है–

आड़ी न आवै मायड़ी, आड़ो न आवै बाप।
किया करम जो भोगवै, भुगतै आपो-आप।।

चलते-चलते थक कर चूर हो गई फिर भी चल रही है, चली जा रही है। क्यों? प्राणों का भय, पुत्र की रक्षा का भय गति प्रदान कर रहा है। तभी कुछ दूरी पर कोलाहल सुनाई दिया – रानी घबराई, कहीं अजितसेन के घुड़सवार सैनिक तो हमारा पीछा नहीं कर रहे– पर उसे सन्तोष हुआ यह जानकर कि ये अश्वारूढ़ सैनिक नहीं, गर्दभारूढ़ कोढ़ी हैं। कोढ़ियों के समूह में से कुछ व्यक्ति रानी की तरफ आ निकले। वन प्रदेश में एक स्त्री और बालक को इस दशा में देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उनमें से एक ने पूछा– "बहिन! तुम कौन हो? इस निर्जन प्रदेश में एकाकी क्यों विचरण कर रही हो?" सहानुभूति पाकर हृदय की वेदना आँखों से बह निकली, रानी ने रोते-रोते अपनी स्थिति बताई और उनसे अपनी और अपने पुत्र की रक्षा की याचना की। उन लोगों ने रानी की दशा जान कर उसे आश्वासन दिया और वे माँ और पुत्र को अपने स्थान पर ले आए। थोड़ी ही देर बाद सामने से उन्हें धूल उड़ती हुई दिखाई दी। रानी फिर भयभीत हुई। कुष्ठियों ने शीघ्रता से रानी और उसके पुत्र को अपने वस्त्रों से

आच्छादित कर गधे पर बिठा दिया, तभी अश्वारूढ़ सैनिक समीप आ गए। सैनिक सरदार ने कड़क कर पूछा– "अरे ओ कोढ़ियो! तुमने एक स्त्री और बच्चे को तो यहाँ नहीं देखा?" उनमें से कुछ बोल उठे– "सेनापतिजी! हमें कुछ पता नहीं, हमने किसी स्त्री और बालक को नहीं देखा। हम तो अपने अशुभ कर्मोदय से कोढ़ से पीढ़ित हैं; आप लोग दूर रहिए, कहीं हमारी हवा न लग जाय।" इतना सुन कर तो वे परम शूरवीर सुभट घृणा से मुँह बिचकाते हुए उल्टे पाँवों लौट पड़े। तब कोढ़ी दल के साथ-साथ चलते-चलते कुछ काल बाद रानी और श्रीपाल उज्जयिनी आ पहुँचे। अब शिशु श्रीपाल किशोर हो चुका था परन्तु विधि का विधान – अब रानी पर तीसरा वज्रपात हुआ। राजकुमार श्रीपाल भी कोढ़ग्रस्त हो गया। माँ की ममता बिलख-बिलख कर कर्मों को कोसने लगी परन्तु क्या हो सकता है? उसने कौशाम्बी के प्रसिद्ध राजवैद्य से औषधि लाने का संकल्प किया। किशोर श्रीपाल को कोढ़ियों के भरोसे छोड़ कर वह एकाकी, कौशाम्बी के लिए चल पड़ी। संयोग ही समझिए–राजवैद्य तीर्थयात्रार्थ गया हुआ था, अतः उसकी प्रतीक्षा में कमलप्रभा को कुछ काल वहीं रुकना पड़ा। बहुत काल प्रतीक्षा करके-करते वह सर्वथा निराश हो चली थी। एक दिन जिनालय के दर्शन करने के बाद उसे अवधिज्ञानी मुनिराज के दर्शन हुए। उसने पूज्य मुनिराज को सविनय नमस्कार किया और अपनी व्यथा निवेदन की। मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से श्रीपाल का सारा वृत्तान्त बता दिया और···

कमलप्रभा अपने वर्तमान में लौटी। मैनासुन्दरी की माँ से बोली– "वह कमलप्रभा मैं हूँ और तुम्हारे जँवाई श्रीपाल।"

अपने दामाद के वंशादि का परिचय ज्ञात कर रूपसुन्दरी के आनन्द की सीमा नहीं रही। उसके नेत्रों से प्रसन्नता के अश्रु बह निकले। उसने मन-ही-मन अपनी पुत्री के भाग्य की सराहना की – पुत्री और दामाद दोनों को आशीष देकर उसने कमलप्रभा से विदा ली। *

प्रजापाल की रानी रूपसुन्दरी अपनी प्रिय पुत्री का विवाह कुष्टि के साथ कर देने के कारण पति से रुष्ट होकर अपने पीहर रहने लगी थी। परेशान, दुःखी बहिन को भाई ने बहुत समझाया था और धर्मध्यान में प्रवृत्त किया था। आज जब बहिन मन्दिरजी से लौटी तो उसका मुख-मण्डल पूर्ण कमल-सा विकसित था। भाई, बहिन से कुछ पूछना ही चाहता था कि बहिन स्वयं पूजा के पात्र यथा-स्थान रखकर भाई के पास आ गई और उसने कमलप्रभा से जो कुछ सुना था वह सबका सब मुदित मन हो पुण्यपाल को सुना दिया। पुण्यपाल यह सब सुनकर अत्यन्त प्रमुदित हुए और कुछ ही काल में स्वयं जाकर अत्यन्त आग्रहपूर्वक श्रीपाल और मदनसुन्दरी (मयणासुन्दरी, मैनासुन्दरी) तथा कमलप्रभा को अपने भवन में ले आए। *

राह से निकलते हुए निकटस्थ परिचितों एवं सम्बन्धियों के आवासों की ओर दृष्टि चली ही जाती है। राजा प्रजापाल के साथ आज यही हुआ। प्रातः हवाखोरी के लिए निकले अश्वारूढ़ राजा की दृष्टि अपने साले पुण्यपाल के भव्य भवन की ओर उठ गई। उन्हें गवाक्ष में एक सुन्दर-स्वस्थ युवक के साथ अपनी पुत्री मदनसुन्दरी दिखाई पड़ी। राजा के मन में संकल्प-विकल्पों की बाढ़-सी आ गई। वे विचारने लगे – यह क्या? मदना पर-पुरुष के साथ! मैंने तो उसे कोढ़ी के साथ ब्याहा था! अहो! अनर्थ हो गया। इसने तो मेरे उज्ज्वल

यशस्वी कुल पर कालिख पोत दी। मैंने भी तो उचित नहीं किया था, दूरदर्शिता से काम नहीं लिया था··· दोष मेरा ही है। राजा प्रजापाल इसी ऊहापोह में थे तभी हवाखोरी से लौटते हुए पुण्यपाल ने उन्हें इस स्थिति में देखा। गवाक्ष में मदना और श्रीपाल को देखकर प्रजापाल की यह उधेड़बुन है, इसे समझने में पुण्यपाल को किंचित् देर नहीं लगी। उन्होंने अपने बहनोई को जयजिनेन्द्र कह कर अपने भवन में पधारने का निमंत्रण दिया और राजा की शंका दूर करने के लिए यह भी कह दिया कि आप मदना के विषय में चिन्तित मत हूजिए। मेरी भानजी कभी अनुचित कार्य नहीं कर सकती है। आप उसके लिए व्यर्थ की कल्पनाएँ मत कीजिए! चलिए, ऊपर पधारिए; सारी वार्ता आपको ज्ञात हो जाएगी।

पुण्यपाल के साथ प्रजापाल ने दूसरे द्वार से भवन में प्रवेश किया। पुण्यपाल और रूपसुन्दरी ने मदना और श्रीपाल के सम्बन्ध में सारी बातें विस्तार से बताईं। अपने पिता के आगमन की सूचना पाते ही मदना श्रीपाल के साथ वहाँ आई। दोनों ने प्रजापाल के चरण-स्पर्श किए। राजा ने शुभाशीर्वाद दिया। वे मदना से बोले–"मदना! मेरा अहंकार, मेरी कर्तृत्व बुद्धि मिथ्या है, इस बात का अनुभव मैं कर रहा हूँ। जिनवाणी सर्वथा सत्य है, तेरी आस्था और तेरी दृढ़ श्रद्धा निश्चय ही सत्य है– कर्म ही, जीव द्वारा उपार्जित कर्म ही शुभाशुभ व्यवस्था करता है–

को काको दुःख देत है, देत करम झकझोर।
उलझे सुलझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर।।

आज मेरे जीवन का पुनीत दिवस है, तेरी दृढ़ श्रद्धा ने मुझ मिथ्यामार्गी को सही मार्ग पर ला खड़ा किया है; मैं

अपनी भूल के लिए अपराधी हूँ।"

राजा ने अपनी पुत्री और दामाद से तथा मदनसुन्दरी की सास कमलप्रभा से भी राजभवन पधारने का आग्रह किया। रूपसुन्दरी से भी राजभवन लौटने को कहा। सबने अपने राजभवन चलने की स्वीकृति दी। राजा को न रानी ने कोसा, न कर्म-सिद्धान्त में आस्था रखने वाली मदना ने। बिना किसी उलाहने के अपनी सहज वाणी में मदना यही बोली– "पूज्यवर! आप अपने मन में किसी तरह का विचार न करें; मेरा ही कर्मोदय ऐसा था, आप या कोई भी इसमें क्या कर सकता था?"

राजा वहाँ से विदा लेकर अपने महल में आया। अपने दामाद और पुत्री के आगमन की उसने विविध तैयारियाँ करवाई। मदना और श्रीपाल का बड़ी धूम-धाम से प्रवेश हुआ। नगर में चारों ओर मदना और जैनधर्म की प्रशंसा होने लगी। जन-जन के मुख पर यही था कि देखो मदना के धर्म ने, *त्याग तपस्या ने कैसा चमत्कार दिखाया।* धन्य है इसका संकल्प और धन्य है इसकी अविचल श्रद्धा मदना के इस प्रसंग से अनेक भव्य स्त्री-पुरुषों का जिनधर्म में अटल श्रद्धान हुआ, धर्म की प्रभावना हुई। मदना को भी जिनधर्म की महती प्रभावना से बड़ा संतोष हुआ। *

(५)

काल निरन्तर प्रवहमान है। सुख का समय हो, चाहे दुःख का; काल की गति एक-सी है। परन्तु संसारी प्राणी के साथ विचित्रता है, उसे सुख का दीर्घकाल भी बहुत थोड़ा लगता है और दुःख का एक पल, एक क्षण भी बड़ा भारी लगता है; बिताए नहीं बीतता। श्रीपाल कुमार को श्वसुर-गृह में रहते-

रहते बहुत काल बीत गया। समय पंख लगाकर कब उड़ गया, कुछ पता ही नहीं चला। पर एक दिन कुछ अद्‌भुत बात हुई – प्रतिदिन की भाँति आज भी श्रीपाल कुमार प्रातः भ्रमण के लिए राजभवन से निकले; कुछ ही दूर गए होंगे कि मार्ग में दो व्यक्तियों का वार्तालाप उनके कानों से टकराया–

पहला व्यक्ति– मित्र! यह पुण्यशाली, सुन्दर, स्वस्थ पुरुष कौन है?

दूसरा व्यक्ति– अरे! तुम इन्हें नहीं पहचानते, सुना तो इनके बारे में जरूर होगा। ये हैं राजा प्रजापाल के दामाद, मदनसुन्दरी के पति।

वार्तालाप बड़ा संक्षिप्त और सहज था परन्तु इसीने कुमार को विचलित कर दिया– "अहो! मुझे मेरे नाम और व्यक्तित्व से नहीं पहचाना जाता। मेरा परिचय है प्रजापाल के दामाद, मदनसुन्दरी के पति।" कुमार का अहं जाग्रत हो उठा। उन्होंने तुरन्त ही अश्व को मोड़ दिया राजभवन की ओर। कुमार के शीघ्र लौट आने पर माता कमलप्रभा ने पूछ लिया– *"कुमार! क्या बात है? क्या तबियत ठीक नहीं?* चेहरा उदास क्यों है?"

मन ठीक न हो तो तन को शिथिल होते देर नहीं लगती, कुमार बोले– "हे माता! शरीर तो बिल्कुल स्वस्थ है किन्तु मन को आघात लगा है, अतः मैं लौट आया हूँ।" माँ के पूछने पर कुमार ने बताया– "माँ! मुझे न तो यहाँ कोई मेरे नाम से जानता है, न पिताजी के नाम से, न आपके नाम से। सभी मेरा परिचय ससुराल पक्ष से ही देते हैं–क्या मेरा कोई व्यक्तित्व नहीं? जब कि नीति कहती है–

उत्तमाः स्वगुणैः ख्याताः, पितृख्यातास्तु मध्यमाः।
अधमाः मातुलाद् ख्याताः श्वसुरंस्त्वधमाऽधमाः।।

अपने गुणों से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला मनुष्य उत्तम होता है, पितृपक्ष से ख्याति प्राप्त करने वाला पुरुष मध्यम होता है। मामा के नाम से ख्याति पाने वाला अधम होता है और ससुराल पक्ष से प्रसिद्धि अर्जित करने वाला अधमाधम होता है।

अतः हे माता! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं देशान्तर जाकर अपने बुद्धि एवं बाहुबल से धन संग्रह करूँ। कहा भी है–

तायविद्यत्ता लक्ष्मी नूनं पुत्तस्स होइ सा भगिनी।
होइ परस्स परित्थी, सयं वियता तओ जुत्ता।।

पिता द्वारा उपार्जित लक्ष्मी पुत्र के लिए भगिनी के समान होती है, दूसरों के द्वारा उपार्जित लक्ष्मी पर-स्त्री के समान है; अतः इनका उपभोग करना अनुचित है। स्वयं के द्वारा उपार्जित लक्ष्मी का ही उपभोग उचित कहा जाता है।

अतः हे मातेश्वरी! मुझे देशान्तर-गमन की आज्ञा दीजिए।"

माँ कमलप्रभा ने भी साथ चलने की अभिलाषा व्यक्त की तो कुमार ने उत्तर दिया – मैं एकाकी ही जाना चाहता हूँ; आपके साथ चलने से आपको भी असुविधा होगी और मैं भी बंधनग्रस्त रहूँगा। आप और मदना दोनों यहीं सुखपूर्वक रहें; मैं शीघ्र लौट आऊँगा।

मदनसुन्दरी ने साथ चलने की जिद की – प्राणनाथ! आपके बिना मैं कैसे रह सकूँगी?

श्रीपाल ने समझाते हुए कहा– "प्रिये! तुम माँ के पास रहोगी तो मैं इस ओर से निश्चिन्त रह सकूँगा। तुम माँ की सेवा में रहोगी, उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होगी उतनी साथ ले जाने में नहीं। और फिर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा…"

धीर गम्भीर, पतिपरायणा मदना अपने प्राणप्रिय के वचन सुनकर कुछ क्षणों के लिए मौन हो गई। प्रतीत होता था मानो उसके हृदय में प्रेम और कर्त्तव्य के बीच संघर्ष चल रहा हो। फिर उसकी दृष्टि श्रीपाल की दृष्टि से टकराई। श्रीपाल की अनुनय-विनय भरी दृष्टि मानो जीत गई। मदनसुन्दरी ने सास की सेवा के लिए पति-विछोह को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। ठीक भी है – महान् व्यक्तित्व अपनी इच्छा पर कर्त्तव्य को प्राथमिकता देते हैं। उनकी दृष्टि में कर्त्तव्य प्रमुख होता है। जब परिवार-व्यवस्था में सदस्यों में कर्त्तव्य निर्वाह की भावना नहीं होती तब कितने ही परिवार विघटित होते नजर आते हैं। पारिवारिक सुख-शान्ति के लिए, पारस्परिक आदर-सम्मान के लिए सहनशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा, त्याग भावना, दूसरों की योग्यता का उचित मूल्यांकन आवश्यक होता है।

श्रीपाल को आश्वस्त करते हुए मदना ने कहा– "स्वामिन्! आप यहाँ की किसी प्रकार की चिन्ता न करिएगा। मैं सब प्रकार से माँ की सेवा करूँगी। आप कुशलतापूर्वक पधारिये··· पर शीघ्र लौटकर इन आँखों को कृतार्थ करने का आपसे अनुरोध करती हूँ।"

कुमार मदना की भावना ज्ञात कर हर्षाभिभूत हो गए। कुछ ही क्षणों में उन्होंने अपने आपको देशान्तर गमन के लिए तैयार कर लिया; फिर माता के चरणों में प्रणाम किया, पत्नी मदनसुन्दरी ने मंगल-तिलक कर पति की निरापद यात्रा हेतु शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। माता ने आशीर्वाद दिया।

दोनों से विदा लेकर कुमार श्रीपाल अपना भाग्य आजमाने निकल पड़े।*

कुमार श्रीपाल ग्राम-नगरों आदि की शोभा देखते हुए वन मार्ग से एक पर्वतीय प्रदेश में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने चम्पक वृक्ष के नीचे एक विद्याधर कुमार को निराशापूर्ण अवस्था में बैठे देखा। कुमार सोचने लगे – यह स्वस्थ, सुन्दर युवक उदासीन भाव से क्यों बैठा है? इसके युवकोचित उत्साह की हानि क्यों हुई है? युवावस्था में ऐसी निराशा क्यों – कोई संकट भी आये तो इस अवस्था में हँसते हुए दृढ़ता से उसका सामना करना चाहिए, रोनी सूरत बनाकर बैठने से क्या लाभ? उन्होंने विद्याधर कुमार को सम्बोधित करते हुए कहा – "बन्धुवर! इतने निराश और हताश क्यों बैठे हो? क्या संकट आ पड़ा है तुम पर?"

विद्याधर कुमार बोला– "मित्र! संकट तो कोई नहीं है। मैं एक विद्या सिद्ध करना चाहता हूँ मगर योग्य उत्तर-साधक के बिना यह सिद्ध नहीं हो रही है।"

सज्जन पुरुष स्वभाव से ही उदार और परोपकारी होते हैं। किसी का कष्ट जानकर वे यथाशक्य उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। स्वार्थ और मोह के बिना ही वे किसी की भी सेवा में तत्पर रहते हैं – उनकी यही भावना रहती है कि–

खिदमद करूँ मैं सबकी, खिदमदगुजार बन कर।
दुश्मन के भी न खटकूँ, आँखों में खार बन कर।।

मेरे सहयोग से, मेरे शरीर अथवा वाणी अथवा संकेत से किसी का बिगड़ा काम बनता हो या सुधरता हो तो अच्छा ही है।

निराश विद्याधर कुमार की बात सुनकर श्रीपाल ने तुरन्त ही उत्तरसाधक बनना स्वीकार कर लिया। विद्याधर कुमार को प्रसन्नता हुई। उसने पुनः विद्या करने का प्रयत्न किया तो

विद्या तत्काल सिद्ध हो गई। कृतज्ञता स्वरूप विद्याधर कुमार ने श्रीपाल को दो औषधियाँ दीं– एक जल-तारिणी और दूसरी शस्त्र-निवारिणी। पहली के प्रभाव से वे जल में नहीं डूब सकते थे और दूसरी के प्रभाव से किसी भी शस्त्र का घाव उनके शरीर में नहीं लग सकता था। यद्यपि श्रीपाल ने इन्हें लेने में आनाकानी की परन्तु विद्याधर कुमार के यह कहने पर कि तुम देश-देशान्तर में एकाकी विचरण करोगे, अतः यदाकदा इनकी आवश्यकता पड़ सकती है। ये तुम्हारी सुरक्षा करेंगी, अतः मेरा अनुरोध मानकर इन्हें ग्रहण कर लो। श्रीपाल ने ये दोनों औषधि-विद्याएँ स्वीकार कर लीं। विद्याधर कुमार प्रमुदित होकर अपने स्थान को चला गया। श्रीपाल ने भी आगे गमन किया।

थोड़ी ही दूर चले होंगे कि उन्होंने कुछ मनुष्यों को कीमियागिरी की क्रियाओं में लगे देखा। कुमार को कौतूहल हुआ कि ये लोग क्या कर रहे हैं? कुछ देर तो वे खड़े-खड़े देखते रहे, उनकी क्रिया सफल नहीं हुई; अतः वे निराश स्वर में एक-दूसरे से कह रहे थे – हर बार सावधानी रखते हुए भी न जाने कहाँ भूल रह जाती है कि क्रिया सफल नहीं होती। कुमार ने उन लोगों से पूछ लिया– भाइयो! आप क्या कर रहे हैं? स्वर्णसिद्धि संलग्न उन पुरुषों ने आकृति से श्रीपाल को उत्तम मनुष्य जान कर कहा– हे भद्र पुरुष! हम लोग कई घंटों से परिश्रम कर रहे हैं परन्तु स्वर्णसिद्धि नहीं हो रही। न जाने किस क्रिया में त्रुटि रह जाती है कि सफलता प्राप्त नहीं होती। कुमार बोले– भाइयो! सर्व क्रियाएँ फिर से आप मेरे समक्ष करो? कीमियावालों ने दत्तचित होकर भावोल्लासपूर्वक सब क्रियायें पूर्ववत् दोहराईं तो इस बार उन्हें

सफलता मिल गई, सोना बन गया। तब वे लोग बड़े प्रसन्न हुए। कुमार से बोले– हे पुण्य-पुरुष! यह सब स्वर्ण आपका है, आप इसे ग्रहण करें। कुमार ने बहुत आनाकानी की तो भी उन कृतज्ञ पुरुषों ने कुमार के पल्ले एक स्वर्णखण्ड बाँध ही दिया।

अब श्रीपाल, विद्याधर कुमार द्वारा प्रदत्त दो औषधि विद्याओं और कीमियावालों द्वारा प्रदत्त स्वर्ण-खण्ड को साथ लेकर यात्रा करते हुए भरुअच्छ (भरूच) नगर में पहुँचे। वहाँ पर स्वर्ण-खण्ड बेचकर उन्होंने वस्त्र तथा शस्त्र खरीदे। उन दोनों विद्याओं को भी सुरक्षित रूप से साथ रखने के लिए धातुत्रय में मढ़वा कर अपनी दोनों भुजाओं पर बाँध लीं। सर्वथा निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व होकर उन्होंने अपना कुछ समय नगर की शोभा देखने में व्यतीत किया। *

(६)

कौशाम्बी नगरी का कुबेरोपम धनेश्वर, पाँच सौ जहाजों का अधिपति धवल नामक सेठ व्यापार हेतु इस भरुअच्छ नगर में आया था। यहाँ पर उसने बहुत-सा सामान बेचा और बहुत-सा खरीद कर अपने जहाजों में भर लिया। इन पोतों की रक्षा के लिए सेठ ने अनेक सुभट नियुक्त कर रखे थे, जो अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो अपने-अपने पोत की सुरक्षा हेतु सतत् सावधान रहते थे।

भरुअच्छ नगर के राजा और अन्य व्यापारियों से विदा लेकर धवल सेठ अपने मंत्रियों के साथ जहाजों पर आया। जहाज प्रस्थान करने के लिए तैयार खड़े हैं; सब नाविक और रक्षक सुभट अपने-अपने पोत पर यथास्थान कार्यरत हैं; स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपने पोत पर आरूढ़

होने के बाद धवल सेठ ने नौकाओं को चलाने का आदेश दिया, लेकिन सेठ का जहाज अपने स्थान से हिला तक नहीं। नाविक ने शक्ति भर कोशिश कर ली तो भी जहाज टस-से-मस नहीं हुआ, ऐसा लगता था मानो स्तम्भित कर दिया गया हो। परेशान नाविक और चिन्तातुर सेठ मंत्रियों सहित अपने जहाज से नीचे उतरा, तो उसे ज्ञात हुआ कि एक भी नौका अपने स्थान से हिल भी नहीं सकी है; सब-की-सब ज्यों-की-त्यों जहाँ-की-तहाँ खड़ी हैं। सेठ को चिन्ता होनी स्वाभाविक थी। उसने एक-दो सेवकों और ज्योतिषीजी को अपने साथ लिया और शहर में जाकर सिकोत्तरी माता से पूछा– "हे मात! यह कैसी विषम परिस्थिति पैदा हो गई है? मेरे जहाज न जाने क्यों स्तम्भित हो गए हैं। मेरे नाविकों ने अथक परिश्रम कर लिया, पर वे हिलते तक नहीं। उत्तर मिला कि हे बत्स! यह क्षुद्र देवताओं की दुष्टता है। यदि तुम बत्तीस लक्षणों वाले किसी पुरुष की बलि दो, तो यह प्रभाव समाप्त हो कर तुम्हारे जहाज अभी चल सकते हैं।

माता को यथायोग्य भेंट देकर धवल सेठ फिर बहुत सारी भेंट लेकर राजा के पास गया। धवल सेठ को आया देखकर स्वयं राजा ने ही प्रश्न कर लिया– "क्या बात हुई? अभी तो विदा लेकर गए थे वणिकवर! अभी पुनरागमन? कुशलता तो है?"

राजा के यह पूछने पर धवल सेठ राजा के चरणों में गिर पड़ा। अत्यन्त दीन स्वर में बोला– "राजन्! मेरे पाँच सौ पोत स्तम्भित कर दिये गए हैं; लाख प्रयत्न करने पर भी वे अपना स्थान नहीं छोड़ पा रहे। उन्हें गतिशील करने के लिए बत्तीस लक्षणों वाले किसी पुरुष की बलि देना आवश्यक है। अतः आपसे निवेदन है कि आप मुझे अपने राज्य में-से ऐसा कोई

पुरुष प्रदान कीजिए।"

धवल सेठ की याचना सुन कर राजा विचार में पड़ गए। अपने राज्य का कोई पुरुष, मगर प्रजा तो पुत्रवत् रक्षणीय होती है। रक्षक राजा ही यदि भक्षक बन जाए तो दीन-दुःखी, पीड़ित कहाँ पुकार करेगा? बाड़ ही यदि खेत को खाने लगे तो व्यवस्था कैसे रहेगी? मैं प्रजा का पालन करने वाला हूँ। कैसे किसी पुरुष को बलि के लिए दे दूँ। धवल सेठ से बोले– "नहीं सेठ! ऐसा नहीं हो सकता, तुम्हारे जहाज चलें या न चलें, मैं अपनी प्रजा में-से किसी भी नागरिक को बलि के लिए नहीं दे सकता।"

अत्यन्त दीन बने सेठ के बहुत गिड़गिड़ाने पर राजा ने कहा– "अच्छा! तुम किसी ऐसे व्यक्ति की खोज कर लो जो इस नगर का न हो, विदेशी हो, परदेशी हो।" ऐसी राजाज्ञा पाते ही सेठ ने अपने सुभटों को चारों ओर दौड़ाया कि वे तुरन्त ऐसे किसी परदेशी को खोज लावें जो बत्तीस लक्षणों से युक्त पूर्णांग हो।

थोड़ी देर में ही सुभटों का एक दल राजा के सैनिकों सहित श्रीपाल के पास आ पहुँचा। सुन्दर, स्वस्थ, प्रसन्न वदन श्रीपाल से एक सुभट ने पूछा– "हे भद्र! लगता है तुम परदेसी हो।" कुमार का उत्तर था– "तुमने ठीक पहचाना! मैं इस नगर का निवासी नहीं, देशाटन करते यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

सब सुभट और सैनिक अपनी सफलता पर अत्यन्त प्रसन्न हुए। बोले– "महाशय! आप हमारे साथ चलिए, हमें आपकी आवश्यता है।"

श्रीपाल मुस्कराते हुए बोले– "कैसी आवश्यकता? क्या हमारा तुम्हारा कोई परिचय है अथवा सम्बन्ध है? जब मुझे

तुम्हारी आवश्यकता नहीं तो तुम्हें क्यों?"

तब सुभटों ने धवल सेठ के जहाज न चलने और उसके लिए किसी बत्तीस लक्षणों वाले पुरुष का बलिदान करने की बात कही। साथ ही राजाज्ञा भी बता दी।

श्रीपाल कुमार बोले– "एक निरपराध की बलि देना चाहते हो? क्या अपराध है मेरा? कैसा राजा है यहाँ का; क्या देशाटन कोई अपराध है?"

सुभट बोले– "आपका कोई अपराध नहीं। बस हमें आवश्यकता है। हमारे स्वामी धवल सेठ के पाँच सौ पोत सामान से लदे, प्रस्थान के लिए तैयार खड़े हैं, उन्हें चलाने के लिए आपकी बलि चाहिए।"

"मूर्खो! क्या नहीं जानते बलि शेर की नहीं, बकरे की होती है;" कुमार ने लापरवाही से कहा– "धवल की बलि क्यों नहीं दे देते, वीर पुरुष का बलिदान नहीं हो सकता। मैं अपनी मर्जी का मालिक हूँ। मैं नहीं चलता।" अब तो सुभट जबरदस्ती करने लगे। उन्होंने और सैनिकों ने कुमार को चारों ओर से घेर लिया परन्तु कुमार की हुंकार को सुनकर और उसके रौद्र रूप को देखकर वे सभी डर कर भाग गए। सारा वृत्तान्त धवल सेठ से निवेदन किया। धवल सेठ ने राजा के पास फरियाद की और सैनिक सहायता की याचना की। राजा ने अपने सैनिक भेजे। कुमार से फिर आत्मसमर्पण के लिए कहा गया, तो उन्होंने स्पष्ट दो टूक उत्तर दिया– "शक्ति हो तो ले चलो, अपनी इच्छा से कभी नहीं जाऊँगा।" इतना सुनना था कि सैनिकों ने शस्त्रों की बौछार प्रारम्भ कर दी। सुभटों ने बाणों की वर्षा की। सैनिकों ने खड्ग, भाले, बरछियों आदि से कुमार के शरीर को आच्छादित कर दिया। इतना

होने पर भी उस पुण्यशाली का शरीर विद्याधर द्वारा प्रदत्त शस्त्र-निवारिणी शक्ति के प्रभाव से क्षत-विक्षत नहीं हुआ। बाण व अन्य शस्त्र उसके शरीर का स्पर्श कर उसके चरणों में गिरते चले गए मानो अपनी दुष्टता के लिए क्षमा याचना कर रहे हों। श्रीपाल कुमार ने उन्हीं अस्त्र-शस्त्रों से क्षण भर में सारी सेना को बिखेर दिया – सुभट और राजसैनिक भाग खड़े हुए।

कुमार की असाधारण वीरता देख कर सबको अपरिमित आश्चर्य हुआ। धवल सेठ विचार करने लगा – असाधारण वीरता सम्पन्न यह सुन्दर स्वस्थ नवयुवक कोई विद्याधर है अथवा देव है अथवा दानव है? अस्तु, चाहे जो हो, अपन तो व्यापारी हैं, अपना प्रयोजन सिद्ध करना ही अपने की इष्ट है, शक्ति से तो इसे वश में नहीं किया जा सकता–विनय और विनम्रता ही इसे जीत सकती है।

अहो! स्वार्थ की महिमा बड़ी विचित्र है। स्वार्थ के लिए व्यक्ति क्या नहीं करता, पाँव भी सहलाता है, चाटुकारी भी करता है, कहावत भी है कि गर्ज के वक्त गधे को भी बाप बना लेता है।

विचारों में अधिक समय नष्ट न कर धवल सेठ श्रीपाल के चरणों में गिर पड़ा। चापलूसी भरे स्वर में बोला– "हे त्रिभुवन तिलक! हे परमवीर! आप का बल और शौर्य देखकर तो देव भी नत-मस्तक हो जाएँ। हम सब धन्य हैं। जो आपके दर्शन पा सके। हे महावीर! आप तो दयावतार हैं, कृपालु हैं; कृपा करके मुझ दीन का संकट दूर कीजिए।"

धवलसेठ को गिरगिट की तरह रंग बदलते देखकर श्रीपाल मन-ही-मन मुस्कराए। बोले– "अब होश में आए तो

पहले जोश में आए ही क्यों? अब क्षमा माँग रहे हो, विनय कर रहे हो; तो पहले ऐसी उद्दण्डता की ही क्यों? क्या पहले इस प्रकार सीधी तरह बात नहीं हो सकती थी? यह तो मेरे इष्ट ने मेरे प्राणों की रक्षा की, कोई और होता तो उस बेचारे को तो अपनी जान गँवानी पड़ती; उसका परिवार बिलखता रह जाता। स्वार्थपूर्ति के लिए किसी की हिंसा जैसा जघन्य कार्य मनुष्य को शोभा नहीं देता। तुम भी मनुष्य हो और एक मनुष्य की बलि देने के लिए तत्पर हो। कहाँ चली गई तुम्हारी मनुष्यता? स्वार्थ ने तुम्हारी आँखों पर पर्दा लगा दिया है। बस तुम्हारे जहाज चलने चाहिए क्योंकि उनके न चलने पर तुम्हें व्यापार में नुकसान हो जाएगा, भले ही इसके लिए मनुष्य की बलि देनी पड़े। पराकाष्ठा है यह लोभ की, नीचता की, दुष्टता की। धिक्कार है इस बुद्धि को।"

धवल सेठ को यह डाँट-फटकार भी अच्छी लग रही थी क्योंकि उसे तो अपना स्वार्थ सिद्ध करना था – दुधारु गाय की तो लात भी अच्छी लगती है। पुनः चरणों में गिर कर उसने कुमार से क्षमा याचना की और जहाजों को चलाने की प्रार्थना की।

कुमार ने कहा– "यदि हम तुम्हारा कार्य सिद्ध कर दें तो हमें क्या दोगे?" सेठ तुरन्त बोला– "एक लाख स्वर्ण दीनार।" कुमार धवल सेठ के साथ जाने को तैयार हो गया। थोड़ी ही देर में वे जहाजों के पास आ पहुँचे। कुमार सबसे आगे के जहाज पर चढ़े, धवल सेठ भी साथ चढ़ा। श्रीपाल कुमार ने महामंत्र का उच्चारण करते हुए मन-ही-मन एकाग्रतापूर्वक नवपद स्मरण किया जिससे क्षुद्र देवताओं का प्रभाव नष्ट हो गया। कुमार ने नाविकों को अपने-अपने जहाज

खेने का आदेश दिया, जहाज सहज रूप से चल पड़े। चारों ओर हर्ष की लहर दौड़ गई। सब इस अपरिचित कुमार की प्रशंसा करने लगे।

धवल सेठ ने वादे के अनुसार कुमार को एक लाख दीनार भेंट किए। धवल सेठ को लगा कि यह व्यक्ति बड़े काम का सिद्ध हो सकता है; यदि यह मेरे जहाजों के साथ चल सके, तो मैं फिर संकटों से मुक्त हो सकता हूँ। इसी आशय के साथ सेठ ने कुमार से कहा– "यदि तुम्हें यहाँ कोई विशेष काम न हो तो तुम हमारे साथ देशाटन के लिये चलो।"

कुमार ने पूछ लिया– "क्या दोगे?"

सेठ ने अपने कंजूस मन को टटोला। फिर बोला– "जितना एक सुभट को देता हूँ उससे दुगुना दे दूँगा।" श्रीपाल के अधरों पर स्मिति खेलने लगी, बोले– "अच्छा! उनकी और मेरी शक्ति बराबर मानते हो तो फिर मुझे बुलाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यदि देना है तो जितना उन सबको देते हो, उतना मुझ अकेले को दो – तो चल सकता हूँ।"

कंजूस सेठ का हृदय तो धक् रह गया। आश्चर्य से मुँह फट पड़ा – इतना केवल एक व्यक्ति को।

कुमार ने कहा– "कोई बात नहीं; तुम्हें यह स्वीकार नहीं तो मैं स्वतन्त्र रूप से एक यात्री की भाँति किराया देकर चलने के लिए तैयार हूँ क्योंकि मैं तो देशाटन के लिए ही निकला हूँ, देश-देशान्तर भ्रमण की मेरी इच्छा है।" 'मन भाया और वैद्य बताया' श्रीपाल भी मिल जाए, वेतन भी न देना पड़े, ऊपर से किराया और मिल जाए – सोने में सुहागा। धवल सेठ तो प्रसन्नता से झूम उठा, बोला– "तो चलो, प्रतिमास सौ दीनार दे देना।"

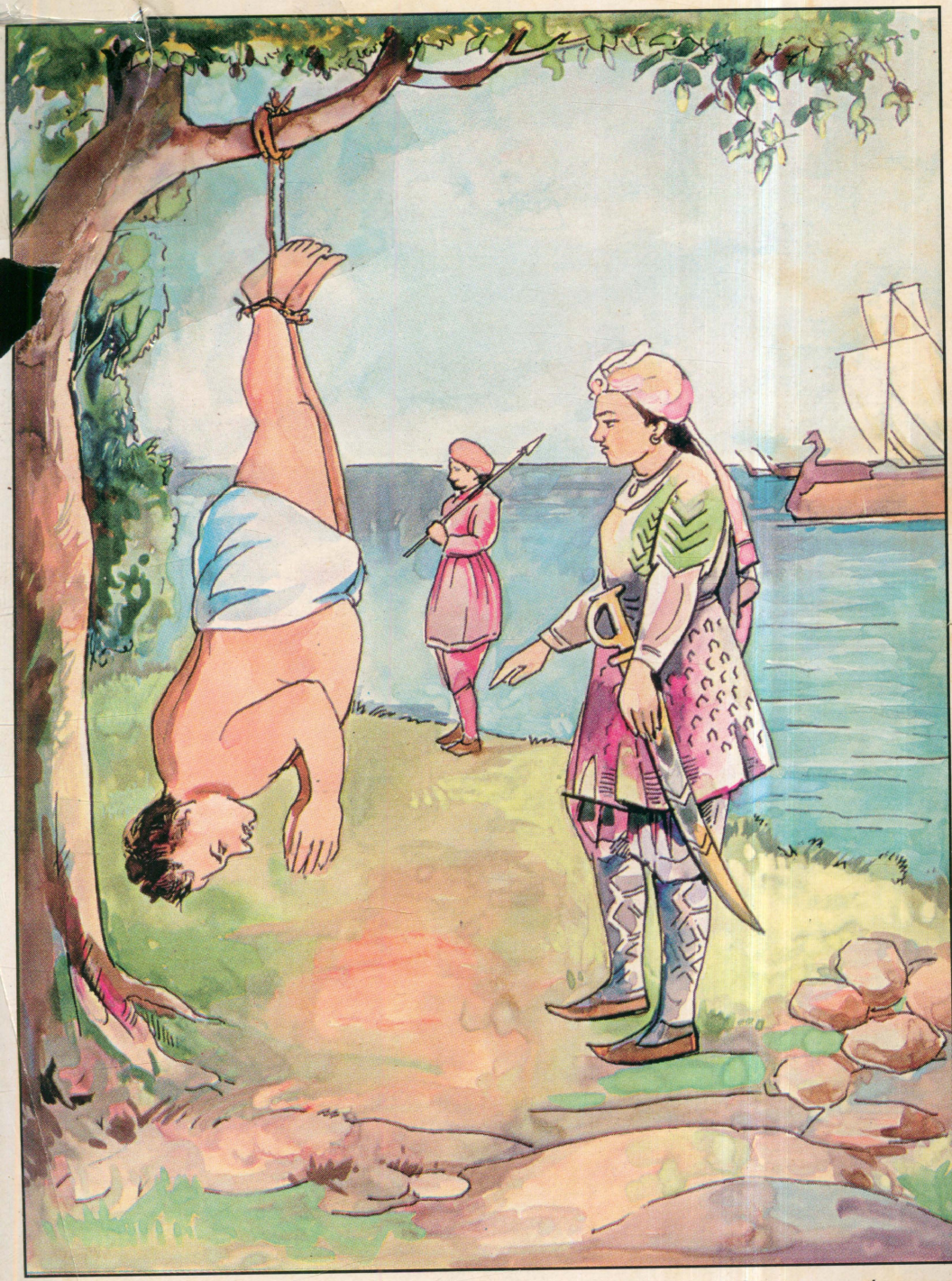

धवल सेठ की यह दशा देखकर श्रीपाल कुमार ने कहा—अहो महाभाग !
तुम्हारे वे सहस्त्रों सुभट कहाँ चले गए ? तुम्हारी यह दशा क्यों हो गई ?

एक माह का किराया देकर श्रीपाल ने एक जहाज में अपना निवास बनाया। जहाज चलते रहे। चलते-चलते वे बब्बर देश के किनारे पहुँचे। यात्री व सुभट जहाजों से उतर कर भूतल पर विचरण करने लगे।

*

जहाजों के विशाल समूह को किनारे लगते देखकर नगर रक्षक कर लेने के लिए आए। अपने सुभटों के बाहु बल पर विश्वास करने वाले धवल सेठ ने कर देने से इन्कार कर दिया और नगर रक्षकों को बुरा-भला कहा। उनको अपमानित किया। तिरस्कृत राजसेवकों ने सारा वृत्तान्त राजा से निवेदन कर दिया जिसे सुनकर महाकाल भूपाल अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने सेनापति को सेना तैयार करने का आदेश दे दिए और थोड़ी ही देर में वह अपनी विशाल सेना सहित जहाजों के स्थान पर आ पहुँचा। राजा की सेना और सुभटों में युद्ध हुआ। विशालवाहिनी के पराक्रम के आगे सुभट अपनी जान हथेली पर ले भाग खड़े हुए। धवल को बन्धनों में जकड़ दिया और उसे पेड़ पर उल्टा लटका दिया गया। सब जहाजों पर राजा ने अपने सैनिक नियुक्त कर दिये।

धवल सेठ की यह दशा देख कर श्रीपाल कुमार ने कहा– "अहो महाभाग! तुम्हारे वे सहस्त्रों सुभट कहाँ चले गए? तुम्हारी यह दशा क्यों हो गई?" वृक्ष पर अधोमुख लटके धवल सेठ ने अनुनय भरे स्वर में कहा– "हे परोपकारिन्! मेरी रक्षा करो, मुझे इस संकट से उबारो। यह उपहास का समय नहीं, दुर्बल और संकट में पड़ा व्यक्ति तुमसे सहायता की याचना करता है। हे दयालु पुरुष! मुझे शीघ्र बन्धन मुक्त करो, क्या इस घड़ी तुम्हारा यों शान्त खड़े रहना उचित है?"

श्रीपाल बोले– "श्रेष्ठिवर! मैं तो एक यात्री मात्र हूँ,

तुम्हारा सेवक तो नहीं; फिर मैं बीच में क्यों हस्तक्षेप करूँ, यही सोच कर मैं निष्क्रिय बैठा था। यदि मैं तुम्हें इस संकट से उबार लूँ, तो तुम मुझे क्या दोगे?"

'मरता क्या न करता' धवल सेठ के मुँह से निकल गया– "अपनी सारी सम्पत्ति में-से आधी तुम्हें दे दूँगा।"

अब श्रीपाल ने महाकाल भूपाल, उसके सेनापति और सैनिकों को ललकारा– "अरे कायरो! कहाँ भागे जाते हो? अभी विजय कैसी? मैं इन्हीं जहाजों में-से एक का यात्री हूँ, मुझे हराने से पूर्व तुम्हारी विजय अपूर्ण है। आओ, मैदान में आ जाओ।"

राजा ने देखा – एक नई उमर का स्वस्थ, सुन्दर नौजवान सबको आह्वान कर रहा है। वह बोला– "रे नवयुवक! होश में आओ अन्यथा जान पर बन आएगी। क्यों शीघ्र मौत के मुँह में जाना चाहते हो? अभी तुम्हारी कच्ची उमर है, फिर तुम्हारे साथ युद्ध करने से लोक में प्रतिष्ठा भी तो नहीं होगी, अतः कहा मानो, शान्त रहो।"

कुमार का उत्तर था– "राजन्! इन शब्दों के बहाने अपनी कायरता मत छिपाओ। शेर का बच्चा – क्या छोटा क्या बड़ा? आओ अभी फैसला हो जाएगा वीरता का।"

राजा ने फिर भी उपेक्षा की तो कुमार ने एक बाण से उसकी विजय-ध्वजा को भूमि पर गिरा दिया; अब तो सेना बिगड़ी। राजा और सेनापति के आदेश से सैनिकों ने श्रीपाल के शरीर को बाणों से आच्छादित कर दिया परन्तु श्रीपाल मुस्कराते हुए यों खड़े रहे मानो उन पर फूल बरसाए जा रहे हों। अब श्रीपाल भी सक्रिय हुए उन्होंने बड़ी कुशलता से बाण चलाए और राजा की सेना को कुछ ही समय में अस्त-व्यस्त

कर दिया। किसी के प्राण तो उन्होंने नहीं लिये परन्तु थोड़ा-बहुत सबक सभी को सिखाया – सेना भागने लगी; महाकाल को बाँध लिया गया। स्वयं श्रीपाल कुमार ने धवल सेठ को बन्धन-मुक्त कर दिया। बन्धन-मुक्त होते ही धवल सेठ बन्धन-ग्रस्त राजा की ओर तलवार लेकर दौड़ा। श्रीपाल ने बीच में ही उसे रोक लिया। नीतिवान् कुमार कहने लगे– "श्रेष्ठिवर! विवेक से काम लो–

गेहागयं च शरणा गयं, बद्धं च रोगपरिभूयं।
नस्संतं बूढबालयं, न हणंति सयणा पुरिसा।।

गृहागत को, शरणागत को, बन्धन से बँधे हुए को, रोगी को, बालक को, वृद्ध को और पीठ देकर भागते हुए को सज्जन पुरुष कभी नहीं मारते।"

राजा ने कुमार को विजयी घोषित किया। वादे के अनुसार श्रीपाल ने धवल सेठ से उसकी समग्र सम्पत्ति का आधा हिस्सा ले लिया। तब सुभट सेठ के पास आए; सेठ ने क्रोधावेश में किसी को भी अपनी सेवा में न लिया, तो परमोपकारी श्रीपाल ने उन सबको अपने २५० जहाजों पर रक्षक नियुक्त कर लिया। वे भी श्रीपाल जैसे वीर पुरुष को अपने स्वामी के रूप में प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

श्रीपाल ने तत्काल ही महाकाल को बन्धन-मुक्त कर दिया और जहाजों का उचित कर तथा वस्त्राभूषणादि भेंट कर राजा का अभिनन्दन किया। अपने पूर्व कृत्य के लिए उन्होंने क्षमा-याचना भी की।

महाकाल भूपाल श्रीपाल की सदाशयता, विवेक और विनम्रता को देख कर आश्चर्यचकित रह गया। उसने कुमार को राजमहल चलने का निमंत्रण दिया। सुभटों को अपने

जहाजों पर नियुक्त कर श्रीपाल, राजा के साथ राजमहल जाने को तैयार होने लगा, तो धवल सेठ बोला– "तुममें कुछ बुद्धि भी है या नहीं; अपने शत्रु के यहाँ जा रहे हो?" श्रीपाल मुस्करा दिए– "कैसा श्रेष्ठिवर! भूपाल मेरे शत्रु नहीं मित्र हैं; मेरी तो विश्व के सभी प्राणियों से मित्रता है, मेरे मन में किसी के प्रति बैर भाव नहीं है तब दूसरों का मेरे प्रति बैर कैसे सम्भव है? तुम चिन्ता मत करो। मेरा कोई अनिष्ट नहीं होने वाला। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा।"

धवल सेठ बोला– "तुमने मेरे जहाज तो ले लिये, उनमें माल भरा है? कुछ व्यापार भी करोगे या नहीं?" कुमार का उत्तर था– "मेरे जहाज भी तुम्हारे सुपुर्द हैं, अपने व्यापार के साथ इनके माल का भी व्यापार कर लेना।" कुमार के इस कथन से धवल सेठ मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। बिल्ली को दूध पीने के लिए मिल जाए तो उसे क्या चाहिए। धवल ने सोचा – अब तो मेरे पौ बारह हैं, पाँचों उँगली घी में हैं। जितना कमा लूँ, सब मेरा है।

धवल सेठ के मन में विकार पैदा होने लगे; लोभ की महिमा बड़ी निराली है; इसके कारण जीव क्या-क्या नहीं करता? हित-अहित, अर्थ-अनर्थ, पुण्य-पाप किसी का भी विचार नहीं करता; बस येन-केन-प्रकारेण धन आ जाए, तरीका उचित हो या अनुचित कोई परवाह नहीं। चाहिए धन! वह मिल जाए तो असीम उल्लास, वह चला जाए तो रो-रोकर सिर पटक ले। कोई सीमा नहीं, कोई बन्धन नहीं, रात-दिन यही खटपट – अधिकाधिक कमा लूँ बस एकमात्र यही लक्ष्य। मानो यही जीवन का सार हो! धिक्कार है ऐसी बुद्धि को। धवल सेठ तो इसी खटपट में लग गए और कुमार

श्रीपाल राजा के साथ राजभवन पहुँच गए।

राजा ने श्रीपाल का अतिशय अतिथि सत्कार किया। उसकी योग्यता, विनम्रता और दक्षता को देख कर राजा ने अपनी पुत्री मदनसेना का हाथ उसके हाथ में देने का प्रस्ताव भी रख दिया। कुमार ने कहा– "राजन्! आपने मेरे सम्बन्ध में कोई पूछताछ नहीं की। आपको न मेरे कुल का पता है, न जाति का, न प्रकृति का। इस अत्यन्त अल्पकालीन परिचय में ही आपने इतना बड़ा विचार कर लिया।"

राजा ने उत्तर दिया– "कुलीनता, गुणवत्ता और योग्यता का पता बिना कहे भी लग जाता है। आपकी उच्च जाति और सौम्य प्रकृति का परिचय आपकी हर क्रिया से ज्ञात हो रहा है। अतः मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिए।"

श्रीपाल और मदनसेना का विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। अतुल वैभव और राजकन्या के साथ श्रीपाल को आता देखकर धूर्त धवल ईर्ष्या से जल उठा – अहो! सर्वथा अकेला आया था मेरे साथ, पर आज कितना वैभवशाली हो गया है और मेरी क्या दशा हुई है!

जीवों की स्वभावगत बड़ी विचित्रता होती है। दुर्जन और सज्जन के स्वभाव में दिन और रात-सा महदन्तर होता है। धवल सेठ नाम से धवल जरूर है परन्तु भीतर से 'कृष्ण'। श्रीपाल सरल हृदय, क्षमाशील और परोपकारी है। कर्म सिद्धान्त में अटल आस्था रखने वाला है। हर आने वाली परिस्थिति का समता भावपूर्वक सामना करता है, न दुःख में अतिशोक, न हर्ष में अत्यन्त आसक्ति। समताभाव ही जीवन का सार है।

*

(७)

रत्नद्वीप के ऊँचे-ऊँचे भवन बहुत दूर से ही देख लेने पर जहाजों में हलचल मच गई। मंजिल दिखाई देने लगती है तो पथिक के कदम तेजी से उठते हैं। सारे जहाज पवनवेग से रत्नद्वीप आ पहुँचे। यात्री अपना सामान समेटने लगे, सुभट जहाजों से उतरकर इधर-उधर घूमने लगे। श्रीपाल भी अपने लाव-लश्कर के साथ तट पर डेरा डालकर आनन्द में लीन हुए। पत्नी मदनसेना भी साथ थी।

तट पर इतनी चहल-पहल और शिविरों को देख कर इनके स्वामी के सम्बन्ध में प्रश्न करता-करता एक पुरुष श्रीपाल कुमार के शिविर में आ पहुँचा। उसने पहरेदार से अपने आने का प्रयोजन बताया। पहरेदार ने कुँवर को सूचना दी। कुंवर ने बाहर आकर उस सर्वथा अपरिचित व्यक्ति से पूछा– "कहो बन्धुवर! आप कौन हैं? यहाँ आने का कष्ट क्यों कर किया है? क्या कोई विशेष असामान्य बात है?"

आगन्तुक ने विनम्रतापूर्वक नमस्कार करते हुए निवेदन किया– "हे महाभाग! यहाँ रत्नद्वीप में रत्नसानु पर्वत पर रत्नसंचया नाम की नगरी है, जहाँ कनककेतु नाम का विद्याधर राजा राज्य करता है; उसके कनकमाला नाम की रानी है। उनके कनकप्रभ, कनकशेखर, कनकध्वज और कनकरुचि नामके चार पुत्र एवं मदनमञ्जूषा नाम की एक पुत्री है। मदनमञ्जूषा धर्मनिष्ठा, तत्त्वज्ञा और जिनभक्तिपरायणा है। वस्तुतः धर्मनिष्ठ जीवन ही प्रशंसनीय होता है–

रात्रि शोभे चन्द्र से, समता से अनगार।
वाणी शोभे सत्य से, धर्म करता नर-नार।।

इस कन्या की जीवनचर्या में धर्म को सर्वोपरि स्थान है। प्रभुपूजन, स्वाध्याय, जप-तप में ही उनकी विशेष रुचि है। एक दिन की आश्चर्यकारी घटना आपसे निवेदन करता हूँ।

उस दिन राजपुत्री जिनालय में प्रविष्ट होकर प्रभु-पूजन में तन्मय हो गई थी। पूजा में तल्लीन अपनी पुत्री को देखकर राजा विचार करने लगे – अहो! मेरी पुत्री कितनी धर्मपरायणा और सुसंस्कार सम्पन्न है! वीतराग प्रभु पर इसकी अपूर्व भक्ति है? ऐसी भक्तिमती दुहिता को योग्य वर भी मिल सकेगा या नहीं? विवाहोपरान्त कन्या का नया जीवन या दूसरा जीवन ही प्रारम्भ होता है। ससुराल में वहाँ की परम्पराओं के अनुरूप चलना पड़ता है। शनैः - शनैः यही सब उसके जीवन का अंग हो जाता है। माता के घर के संस्कार धूमिल होते-होते नष्ट ही हो जाते हैं।...

राजा सोच रहे हैं – विवाह के बाद मेरी पुत्री के इन सुसंस्कारों को पोषण मिलेगा या नहीं? कहीं वर पक्ष इन सबकी उपेक्षा तो नहीं कर देगा?

इस तरह विचार करता-करता राजा रंग-मण्डप से निकलकर बाहर के मण्डप में आ गया और राजकन्या भी मूल गर्भगृह से निकल कर रंग-मण्डप में आ गई तभी मूल मन्दिर के दोनों कपाट स्वतः ही शीघ्र बन्द हो गये।

हे सत्पुरुष! कपाटों का स्वतः बन्द होना सबके लिए आश्चर्यजनक था। उस समय अन्य लोगों ने व राजा ने भी मिलकर अनेक उपाय किए किन्तु कपाट नहीं खुल सके। सबके मन क्षुब्ध हो गये।

राजा विचार करने लगा – यहाँ जिनालय में मैंने पुत्री के विवाह-सम्बन्धी संकल्प-विकल्प किये – कहीं उसी का तो

यह दुष्परिणाम नहीं है? राजपुत्री सोचने लगी कहीं पूजा में तो मुझसे कोई भूल नहीं हुई? कहीं किसी प्रकार की आसातना तो नहीं बन पड़ी?

सभी उपस्थित स्त्री-पुरुषों के हृदय पर न जाने कैसी-कैसी और कितनी-कितनी कल्पनाओं ने साम्राज्य स्थापित कर लिया।

राजा ने तीन दिन का उपवास किया। तीसरी रात्री में आकाशवाणी हुई– "भो राजन् और नगरवासियो! मैं आदिनाथ भगवान् की सेविका चक्रेश्वरी हूँ। यहाँ पर राजकन्या का कोई दोष नहीं, इसी तरह राज़ा का भी दोष नहीं है। जिन-मन्दिर के ये दोनों कपाट जिस पुण्य-पुरुष के दृष्टिपात से खुल जायें, वही राजकन्या का पति होगा।" यह देववाणी सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए परन्तु अभी तक मन का कौतूहल शान्त नहीं हुआ था; वह यह जानना चाहता था कि यह संयोग कितने समय में घटित हो सकेगा? इतने में पुनः देववाणी हुई कि एक माह की अवधि के भीतर-भीतर यह काम हो जाएगा। जिस किसी ने भी यह संवाद सुना वह प्रमोद से फूला न समाया। तब से अब तक अनेक लोग जिन-मन्दिर के किवाड़ खोलने का प्रयास कर चुके हैं। आज भी वह क्रम चल रहा है। हे पुण्यपुरुष! इस मामले को कुछ कम एक महीना हो गया है मगर कपाट ज्यों-के-त्यों बन्द पड़े हैं।

हे सत्पुरुष! आप द्वीपान्तर से आये हैं। यदि आपके हाथ से यह पुनीत कार्य सम्पन्न हो, तो देववाणी सार्थक हो सकती है।"

आगन्तुक की वार्ता सुनकर श्रीपाल ने उसे उचित भेंट देकर विदा किया।

कुछ देर बाद प्रभु-वन्दना के लिए तैयार होकर श्रीपाल सेठ के पास आये और बोले··· "सेठ साहब! चलिए प्रभु-दर्शन के लिए जिनालय चलें!" श्रीपाल का यह प्रस्ताव सुनकर धवल सेठ का मुँह बिगड़ गया, मानो कोई कसैला पदार्थ मुँह में चला गया हो। बोला– "यहाँ तो काम से फुरसत नहीं मिल रही है और तुम्हें घूमने की सूझ रही है; मुझे कहीं नहीं जाना, तुम्हें जाना हो तो जाओ।"

धवल के लिए धन ही सब कुछ है, वही उसका भगवान् है। यह जीव दुर्लभ मनुष्य-पर्याय को प्राप्त कर ले तो भी धर्मश्रवण, धर्म में श्रद्धा आदि में पुरुषार्थ दुर्लभ है–

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुईसद्धा, संजमम्मि य वीरियं।।

मनुष्यजन्म, श्रुतिश्रवण अर्थात् ज्ञानियों के मुखारविन्द से अच्छे-अच्छे वचनों का श्रवण, सुने हुए सद्वचनों में श्रद्धा और संयम में प्रवृत्ति हेतु पुरुषार्थ! ये चारों बातें उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं।

धवल सेठ का उत्तर पाकर श्रीपाल उन्हें वहीं छोड़ कर अपने परिवार सहित श्रीजिनालय आ पहुँचे। वहाँ प्रतिदिन की भाँति आज भी मनुष्यों की भीड़ थी। सब निराश थे। श्रीपाल कुमार ने 'निस्सही··· निस्सही··· निस्सही···' शब्द कहते हुए जब भक्तिपूर्वक रंग-मण्डप में प्रवेश किया और मूल गर्भगृह के समक्ष पहुँचकर वे नवपदजी का ध्यान करने लगे तो गर्भगृह के कपाट स्वतः ही खुल गए। जिनबिम्ब के दर्शन कर कुमार ने स्तुति आरम्भ की–

जय त्वं जगदानन्द! जय त्वं जगदीश्वर।
जय त्वं त्रिजगद्बन्धो! जय त्वं त्रिजगत्प्रभो।।
जय त्वं त्रिजगन्नेत्र! जय त्वं त्रिजगत्पते।
जय त्वं त्रिजगन्नाथ! जय त्वं नाभिनन्दन।।

नमो नमो विश्वविभूषणाय, नमो नमो निर्गतदूषणाय।
नमो नमो केवलभास्कराय, नमो नमो सर्व जिनेश्वराय।।

(हे जगत् को आनन्द देने वाले! जगत् के ईश्वर! हे विश्वबन्धो! हे जगत्प्रभो! आप हमेशा जयवन्त वर्त्तो। हे तीन जगत् के नेत्र समान तीन जगत् के स्वामी, तीन जगत् के नाथ, हे नाभिनन्दन आप हमेशा जयवन्त वर्तो।

हे विश्वविभूषण! आपको नमस्कार हो। हे निर्गत-दूषण! आपको नमस्कार हो। सर्व जिनेश्वरों के लिए मेरा नमस्कार हो।)

श्रीपाल कुमार के पुण्य से सभी उपस्थित लोगों को ईर्ष्या हुई। राजा को अपार हर्ष हुआ। चैत्य-वन्दना से निवृत्त होकर जब श्रीपाल जिनालय से बाहर आए तो राजा ने उनका अभिनन्दन किया और उनके कुल, वंश, माता-पिता, स्थान आदि के सम्बन्ध में जिज्ञासा व्यक्त की। अपने मुँह से अपने ही सम्बन्ध में बताने में कुमार को संकोच हो रहा था तभी संयोगवश एक चारणऋद्धिधारी मुनिराज पधारे। मुनिराज जिनदर्शन कर बाहर बिराजे। उपस्थित सभी श्रावकों ने गुरुवर को नमस्कार किया, सब यथोचित स्थान पर बैठ गए। अवसर पाकर मुनिराज ने देशना देते हुए नवपदजी का महात्म्य बताया और इसकी आराधना का फल प्राप्त करने वाले श्रीपाल कुमार का नामोल्लेख किया। यह सुनकर राजा बोला– "हे प्रभो, वह श्रीपाल कुमार कौन है?" तब मुनिराज ने श्रीपाल के सम्बन्ध में विस्तार से बताते हुए कहा कि वह श्रीपाल यहीं तुम सबके मध्य उपस्थित है। देशना देकर मुनिराज पुनः गगनमार्ग से चले गये।

सुयोग्य वर पाकर राजा कनककेतु ने अपनी पुत्री मदनामंजूषा का विवाह बड़ी धूमधाम सहित श्रीपाल से कर दिया। श्रीपाल कुमार वहीं एक सुन्दर महल में अपनी पत्नियों सहित आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन जब राजा कनककेतु श्रीपाल कुमार के साथ जिनालय में पूजन कर रहे थे तो एक राजसेवक ने आकर राजा से निवेदन किया कि हे स्वामिन्! कई दिनों से एक बड़ा व्यापारी द्वीपान्तर से आया हुआ है परन्तु उसने कर न देकर राजाज्ञा का उल्लंघन किया है, अतः मैं उसे बन्दी बनाकर ले आया हूँ। अब उसके लिए आपकी क्या आज्ञा है? राजा ने सगर्व आदेश दिया कि हमारी आज्ञा भंग करने वाले के प्राण अपहरण करने चाहिए। यह सुनते ही करुण हृदय श्रीपाल बोल उठे– "राजन् जिनालय में प्राण अपहरण की आज्ञा? एक पंचेन्द्रिय संज्ञी मनुष्य को मृत्युदण्ड!" राजा को अपनी भूल का अहसास हुआ।

जिनालय में भी अपने अविवेक का परिचय देने वालों की कमी नहीं है। इधर पूजा चल रही है उधर घर-गृहस्थी की हजार बातें हो रही हैं। हमें इसका भी भान नहीं रहता कि हम किस स्थान पर हैं और हमें यहाँ क्या करना चाहिए? जहाँ इधर-उधर देखने का, बात करने का, घर-गृहस्थी के संकल्प-विकल्प करने का निषेध हम परम्परागत 'निस्सही' शब्द का उच्चारण करके कर तो लेते हैं परन्तु ज्ञान-नेत्र को, विवेका-नेत्र को बन्द रखकर ही सब क्रियायें करते जाते हैं। उधर हमारे भाव ही नहीं लगते, भाव के बिना क्रिया सार्थक नहीं होती। क्रिया के साथ विवेक आवश्यक है।

जिनेन्द्रपूजा से निवृत्त होकर राजा और कुमार दोनों

जिनालय से बहार आए तो सैनिकों ने बन्दी धवल को राजा के समक्ष उपस्थित कर दिया। धवल को बन्दी के रूप में देखकर श्रीपाल तुरन्त बोल उठे– "राजन! ये तो वही सेठ हैं जिनके साथ मैं इस द्वीप में आया हूँ। ये मेरे पिता के समान हैं। प्राणदण्ड की आज्ञा आप वापस न लेते तो आज अनर्थ हो जाता।" तब राजा ने धवल के सब बन्धन आदि खुलवा कर उसका सत्कार किया। कुमार ने धवल सेठ को सम्बोधित करते हुए कहा– "कर देने में कृपण मत बना करो। राज्य को यथोचित, नियमानुसार कर देना प्रत्येक का कर्त्तव्य है।" सेठ ने चुपचाप यह बात सुन ली।

कुछ काल बाद श्रीपाल कुमार ने अपनी पत्नी सहित राजा से विदा ली और धवल सेठ व अन्य यात्रियों के साथ आगे की यात्रा के लिए अपने जहाज में सवार हुए।

विपुल वैभव के स्वामी श्रीपाल कुमार को अपनी रमणियों के साथ क्रीड़ा करते देख धवल सेठ ईर्ष्या से जलभुन गया। सोचने लगा– "यह युवक अकेला आया था और आज पुण्य के प्रभाव से इसके पास कितनी सम्पत्ति है, साथ में दो-दो रूपवती स्त्रियाँ हैं।"

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति यत्नतः।।

(पुण्य का फल प्राप्त करना तो हरेक चाहता है परन्तु कोई भी मनुष्य पुण्य करना नहीं चाहता। पाप का फल कोई नहीं चाहता, फिर भी पाप क्रियायें प्रयत्नपूर्वक करते रहते हैं।)

ईर्ष्याग्नि की लपटों में झुलस कर धवल सेठ काला पड़ गया, दुर्बल हो गया। जब बसन्त ऋतु में सारे पेड़-पौधे

लहलहाते हैं, हरित किसलयों से आच्छादित होकर शोभा को प्राप्त होते हैं तब (कहते हैं) जवासा उन्हें देख-देख कर ईष्या से कुम्हला जाता है, किन्तु पतझड़ में सुन्दर वृक्षों के पत्ते पीले होकर जब झड़ने लगते हैं तो वह लहलहाने लगता है। दुर्जनों की प्रकृति दुर्निवार होती है।

श्रीपाल का वैभव देखकर धवल बहुत दुःखी रहने लगे। उनके मित्रों ने उनकी अवसादपूर्ण मुखमुद्रा देखकर आत्मीयतावश एक दिन पूछ लिया– "कहो मित्र! तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है ना! क्या बात है आजकल? इतने परेशान और चिन्तित क्यों रहने लगे हो?"

धवल सेठ, थोड़ी देर तक तो 'कुछ नहीं, सब ठीक है' कहते रहे। परन्तु मित्रों ने जब विशेष आग्रह किया तो वे अपने को रोक नहीं पाए और उन्होंने अपनी सारी व्यथा-कथा मित्रों को सुना दी। वे कहने लगे– "क्या कहूँ? कैसे कहूँ? कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। मेरा दर्द अब बहुत बढ़ गया है, अब सहा नहीं जाता।" मित्रों ने सहानुभूति व्यक्त की, दुःख दूर करने का आश्वासन दिया, तो धवल सेठ बोले– "मेरी अशान्ति का मूल कारण है श्रीपाल और इसका बढ़ता हुआ वैभव! इसकी दो युवती रमणियाँ। इसके पास इतना क्यों? मेरे पास क्यों नहीं; मुझे किसी भी मूल्य पर श्रीपाल का सम्पूर्ण वैभव चाहिए।"

इतना सुनते ही चार मित्रों में-से तीन मित्र तो इस तरह चौंके मानो उन्हें बिच्छू काट गया हो। वे बोले– "अरे धवल! श्रीपाल के लिए ऐसी दुर्भावना।"

दुष्ट धवल बोला– "हाँ जब तक श्रीपाल की मृत्यु नहीं होगी, मेरी अभिलाषाएँ पूर्ण नहीं हो सकतीं। अतः उसे मार

डालने का कोई प्रयोग करना चाहिए।"

तीनों मित्र बड़े कुपित हुए। धवल को धिक्कारते हुए बोले– "सेठ धिक्कार है तुझको, धिक्कार है तेरे कलुषित हृदय को। हममें तो ऐसे शब्द सुनने की भी शक्ति नहीं है। किसी का उपकार न कर सको तो कोई बात नहीं परन्तु अपने उपकारी के प्रति तुम्हारे ये कृतघ्नतापूर्ण विचार! तुमसे अधिक नीच और कौन होगा? पर-धनहरण और पर-स्त्रीहरण महादोष है, किसी को मारने का प्रयत्न करना महा निन्द्य अपराध है। ऐसा करना उचित नहीं, इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। श्रीपाल कुमार धर्मपरायण, परोपकारी, उदारहृदय, दातार और पुण्यशाली पुरुष है, इससे द्वेष रखने पर तुम्हारा समुद्र पार लगना भी कठिन हो जाएगा। श्रीपाल के उपकारों को तू आज ही भूल गया क्या? अरे तेरे स्तम्भित जहाजों को किसने चलाया था? तुझे महाकाल के बन्धनों से किसने छुड़ाया था? रत्नद्वीप में फाँसी से किसने बचाया था? अरे कृतघ्न! इन सब उपकारों को तू भूल गया और अपने उपकारी की हत्या करने-कराने के लिए तैयार हो गया। तुझ जैसे नीच का तो मुख देखना भी पाप है। आज से हमारी-तुम्हारी मित्रता समाप्त हुई समझो। हम तो जा रहे हैं लेकिन ध्यान रखना–यदि इन कुटिल विचारों को तुमने अपने हृदय से नहीं निकाला तो तुम्हारे इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ जायेंगे; क्योंकि तुम्हारा पुण्य जुगनू है और श्रीपाल का पूण्य सूर्य है। लोभ करने से ही धन-सम्पत्ति-वैभव प्राप्त नहीं होता, श्रीपाल ने लोभरहित होकर भी इतना वैभव प्राप्त किया है–

लोभे कए वि अत्थो ण होइ पुरिसस्स अपडिभोगस्स।
अकए वि हवदि लोभे अत्थो पडिभोगवंतस्स।।

(लोभ करने पर भी पुण्यरहित मनुष्य को द्रव्य नहीं मिलता जबकि न करने पर भी पुण्यवान् को धन की प्राप्ति हो जाती है।)

हे सेठ! तेरा नाम धवल है, मगर तेरा हृदय काला है। ऐसी अनाचार बुद्धि ठीक नहीं–

अनाचारे मतिर्यस्य, स हन्ति जन्मनो द्वयं।
दुर्गतिः परलोकस्य, इह लोके विडम्बना।।

(जिसकी मति अनाचार में लीन है, उसने अपने दोनों भव नष्ट कर लिये वह इस लोक में भी विडम्बना पाता है और परलोक में भी दुर्गति को प्राप्त होता है।)

हे सेठ! इस कार्य में जो कोई तुम्हें सलाह दे, उसे तुम अपना परम शत्रु समझना।" इस तरह धवल सेठ को 'धिक्-धिक्' कहते हुए वे तीनों मित्र अपने-अपने स्थान पर चले गये। परन्तु धवल सेठ ने उनके सत्परामर्श को स्वीकार नहीं किया– ठीक ही तो कहा है– 'विनाश-काले विपरीत बुद्धिः'। तीव्र पाप का उदय होने पर भली से भली सलाह भी ठीक प्रतीत नहीं होती और व्यक्ति अनिष्ट करने पर ही उतारू हो उठता है। चौथा मित्र जो अभी तक वहीं बैठा था, वह मधुर स्वर में कहने लगा– "प्रिय मित्र! ये तीनों तुम्हारे हितैषी नहीं द्वेषी हैं। तुम्हारे प्रिय मैं करूँगा। जो आवश्यकता पड़ने पर मित्र की सहायता न करे वह मित्र कैसा? मैं तुम्हारे साथ हूँ, तुम्हारी हर सम्भव सहायता करूँगा।" इस धूर्त पुरुष की बातें धवल को बहुत अच्छी लगीं, इसकी मधुर शीतल वाणी सुनकर धवल के सुलगते हृदय को शान्ति का अनुभव हुआ।

मुखं पद्मदलाकारं वाचा चन्दन शीतला।
हृदयं कर्तरीतुल्यं धूर्तस्य लक्षणं त्रयम्।।

(धूर्त व्यक्ति के तीन लक्षण हैं– उसका मुख कमल के पत्ते के समान कोमल होता है, वाणी चन्दन के समान शीतल होती है और हृदय कैंची के समान होता है।)

धवल सेठ इस धूर्त मित्र से सहायता का आश्वासन पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा– "मित्र! कोई योजना बनाओ।" मित्र बोला– "देखो! तुम श्रीपाल से अपनी घनिष्ठता बढ़ाओ; उसे अपने प्रेम व्यवहार से अपना बना लो। फिर जहाज पर एक ऊँची मंचिका बँधाओ, उस पर कौतूहल देखने के लिये श्रीपाल को बुलाना और कुछ देर बाद स्वयं किसी बहाने से नीचे उतर आना, तब मैं उसकी डोरी काट दूँगा और तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जाएगा अर्थात् श्रीपाल समुद्र में गिरकर जलचरों का भोजन बन जाएगा।"

कितने प्रसन्नभाव से दुष्ट मित्र योजना बना रहा है! यही भाव हिंसा है, रौद्र ध्यान है जिसका परिणाम घोर नरक गति है। श्रीपाल की गतिस्थिति तो उसके अपने कर्मोदय से होगी पर धवल सेठ और उसका धूर्त मित्र ऐसी कपट योजना बनाकर अपना ही घोर अहित कर रहे हैं– मन में हिंसा के भाव लाना ही तो हिंसा है, भले ही जीव का घात हो या न हो। दोनों ने श्रीपाल की हत्या करने का संकल्प किया। यह संकल्पी हिंसा जीव का घोर अनिष्ट करने वाली होती है। गृहस्थ दशा में इससे अवश्य बचना चाहिए। साधु के तो संकल्पी, आरम्भी, उद्यमी, विरोधी – चारों प्रकार की हिंसा का त्याग होता है परन्तु गृहस्थ दशा में आरम्भी, उद्यमी, विरोधी हिंसा का त्याग गृहस्थ नहीं कर पाता। संकल्पी हिंसा का त्याग तो उसके नियमपूर्वक होना ही चाहिए अन्यथा उसे अहिंसा धर्म का पक्षधर भी नहीं कहा जा सकता।

सरल हृदय श्रीपाल मंचिका पर चढ़ गए। कुछ ही देर बाद धवल सेठ नीचे उतर आया और शीघ्र ही दुष्ट मित्र ने डोरी काट दी। श्री पाल समुद्र में जा गिरे।

धवल ने मित्र की योजनानुसार श्रीपाल से स्नेह व्यवहार बढ़ाया। मित्र ने मंचिका बनाई और एक दिन जब संध्या का सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, समुद्र की लहरें अठखेलियाँ करती हुई जहाज से टकरा रही थीं, धवल ने श्रीपाल को मंचिका पर बुलाया – देखो! कितना सुन्दर दृश्य! सरल हृदय श्रीपाल मंचिका पर चढ़ गए। कुछ ही देर बाद धवल सेठ नीचे उतर आया और शीघ्र ही दुष्ट मित्र ने डोरी काट दी। श्रीपाल समुद्र में जा गिरे। गिरते-गिरते उन्होंने नवपद का ध्यान किया, जलतारिणी औषधि के बल से व अपने पुण्य के प्रभाव से एक मगरमच्छ की पीठ पर सवार होकर कोंकण देश के तट पर जा पहुँचे। *

श्रीपाल के समुद्र में गिरने का निश्चय होते ही कपटी-कुटिल धवल सेठ जोर-जोर से विलाप करने लगा– "हे मित्र! हे परम सहायक! कुमार! श्रीपाल! मेरी आँखों के तारे! तुम सागर में कैसे गिर पड़े!" धवल के विलाप को सुनते ही सभी जहाजों में श्रीपाल कुमार के समुद्र में गिरने की बात तुरन्त प्रसारित हो गई। जहाज रुक गए पर बीच समुद्र में कैसे कोई इस जहाज तक पहुँचता? तीनों हितैषी मित्र समझ गए की दुष्ट सेठ ने अपनी कुटिलता को क्रियान्वित कर दिया है। श्रीपाल कुमार की पत्नियों ने जब यह दुःसम्वाद सुना तो मानो उन पर आकाश ही टूट पड़ा हो.... वे हा! हा! करती मूर्छित हो गईं। सेविकाओं ने शीतल जल के छींटों से उनकी मूर्छा भंग की। होश में आने पर क्रूर काल को कोसती हुई वे दोनों अपने भाग्य को दोष देने लगीं। उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होते देख लम्पटी धवल सेठ उन्हें सान्त्वना देने के लिए आया। बोला– "देवियो! तुम्हारा जीवन बरबाद हो गया, भयंकर

अनर्थ हो गया, लेकिन तुम चिन्ता मत करो – मैं जैसा भी हूँ तुम्हारी जिन्दगी का सहयोगी हूँ।"

धवल के शब्दों में छिपी लोभवृत्ति और कामान्धवृत्ति को दोनों समझ गईं। आँखों ही आँखों में यह निर्णय भी हो गया कि जो कुछ घटित हुआ है वह सब इसी पापी की करतूत है। पर अब सँभल कर इस दुष्ट से अपनी रक्षा करनी है। दोनों ने अपने आराध्य देव का स्मरण कर इस बात की प्रार्थना की कि उन्हें आसन्न विपत्ति का साहस से सामना करने का बल प्राप्त हो। यह कहावत यथार्थ है कि देवता भी उनकी सहायता करते हैं जो अपने सहायक आप बनते हैं। वस्तुतः जीव का अपना पुण्य ही उसका रक्षक होता है। पुण्य के सत्ता में होने पर अन्य भी सब सहायक बन जाते हैं, अन्यथा नहीं–

बने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि।।

(वन में, युद्ध में, शत्रु, जल और अग्नि के बीच में, सागर में, पर्वत के शिखर पर, सुप्तावस्था में, प्रमत्तावस्था में या किसी भी विषमस्थिति में जीव की रक्षा उसके पूर्वकृत पुण्य ही करते हैं – अन्य कोई नहीं।)

सहसा चारों ओर गहरा अन्धकार छा गया। समुद्र के पानी में भयंकर हलचल होने लगी। जहाज डगमगाने लगें। यात्री घबरा गए। समझ गए कि पुण्य-पुरुष श्रीपाल का वियोग होते ही विपत्तियाँ सिर पर आ पड़ी हैं।

कोपविष्ट देव-देवियाँ जहाज पर दृष्टिगत हुए। उन्होंने सर्वप्रथम उस कुटिल मित्र की खबर ली। उसकी दुर्दशा देख कर धवल भागा और मदनसेना व मदनमंजूषा के चरणों में जा गिरा– "देवियो! **बचाओ, बचाओ, मुझे बचाओ।**" यह

चक्रेश्वरी देवी ने कहा–तुने इन सतियों की शरण
ली है अतः तुझे छोड़ रही हूँ।

सुन कर चक्रेश्वरी देवी ने कहा– अरे दुरात्मन्! तूने पुण्य-पुरुष श्रीपाल की हत्या का प्रयास किया, इन पतिव्रता स्त्रियों पर कुदृष्टि रखी, तू कभी बच नहीं सकता था, परन्तु तूने इन सतियों की शरण ली है अतः तुझे छोड़ रही हूँ। जा, नीच! कभी इनकी तरफ फिर कुदृष्टि मत डालना अन्यथा तेरी खैर नहीं।"

चक्रेश्वरी देवी ने दोनों स्त्रियों को आश्वस्त करते हुए कहा– "पुत्रियो! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारे पति निरापद रहेंगे और एक माह के भीतर-भीतर तुम्हारा और उनका मिलन हो जाएगा।" एक-एक माला देते हुए देवी बोली– "माला अपने गले में डाल लो जिससे यदि कभी कोई दुष्ट तुम पर कुदृष्टि डालेगा भी तो इसके प्रभाव से अन्धा हो जाएगा।"

दोनों ने बड़े विनीत भाव से माला स्वीकार की और देवी का उपकार माना। देवी के आश्वासन से आश्वस्त हुईं। दोनों ही शान्त-भाव से इष्ट स्मरण करती हुई रहने लगीं। समय का पंछी अपने पंख पसार कर उड़ता रहा। कुछ काल में जहाज कोंकण देश के तट पर आ पहुँचे। *

(८)

समुद्र में गिरने के बाद जलतारणी औषधि के प्रभाव से श्रीपाल कुमार सुरक्षित कोंकण देश के किनारे आ पहुँचे। थकान दूर करने के लिए वे तटवर्ती एक सघन वृक्ष की छाया में जाकर लेट गए। उन्हें नींद आ गई। नींद खुलने पर देखा कि उनके समीप कुछ राजकीय सुभट उपस्थित हैं। कुमार उनसे कुछ पूछते, इससे पूर्व ही उनमें से एक बोला– "भद्रपुरुष! हम प्रतिष्ठान नगर के राजा वसुपाल के अनुचर हैं। उन्होंने हमें आपको सादर राजमहल पहुँचाने का आदेश दिया है।"

सर्वथा अपरिचित प्रदेश में अपने आप को राजा द्वारा निमंत्रित पाकर कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे भी कौतूहलवश उनके हो लिये। कुछ ही देर में वे सभी राजदरबार जा पहुँचे। सुभटों ने जाकर सूचना दी कि आपके आदेशानुसार चम्पक वृक्ष के नीचे उपस्थित पुरुष को हम लोग सादर यहाँ ले आए हैं। राजा ने उन्हें पुरस्कृत करते हुए 'अतिथि' को सादर राजदरबार में उपस्थित करने के लिए कहा। कुमार के आने पर सिंहासन से उठकर स्वयं राजा ने उनका सत्कार किया और उन्हें भी अपने ही समीप के एक सिंहासन पर बैठाया।

श्रीपाल इस सारी आवभगत से कुछ अनुमान नहीं लगा पाए। अतः उन्होंने विनम्र स्वर में प्रश्न किया– "राजन्! मैं अभी तक अपने यहाँ निमंत्रित किए जाने का कुछ प्रयोजन नहीं समझ सका हूँ। क्या आप मेरे कौतूहल को शान्त करेंगे?" राजा ने उत्तर दिया– "हे महाभाग निमित्तज्ञानी ने मुझे बताया कि वैशाख सुदी दसमी के पिछले पहर में समुद्र के किनारे स्थित चम्पक वृक्ष के नीचे जो पुरुष होगा, वह आपकी पुत्री मदनमंजरी का पति होगा। आज वही शुभ तिथि है और आपको उसी वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए मेरे सुभटों ने प्राप्त किया है। अतः आपसे अनुरोध है कि आप मेरी पुत्री को स्वीकार करें।"

कुमार ने मन-ही-मन अपने भाग्य की विलक्षणता पर आश्चर्य करते हुए कहा– "पूज्यवर! आप मेरी कुल, जाति, सम्पत्ति, योग्यता आदि कुछ भी जाने बिना मुझे अपनी पुत्री सौंप रहे हैं; कृपया पुनर्विचार कर लीजिए।"

वसुपाल ने कहा– "निमित्तज्ञानी के वचनों में मेरी पूरी

आस्था है। पुनर्विचार की कोई आवश्यकता नहीं; यह तो मेरा पूर्व निर्णय है और पक्का-निर्णय है।"

राजा की दृढ़ता देखकर कुमार ने विवाह की स्वीकृति दे दी। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। नगर में चारों ओर आनन्द छा गया।

कुमार श्रीपाल समुद्र में गिरे तब भी अधीर, व्याकुल नहीं हुए थे और अब शहनाइयाँ भी बज रही हैं तो भी विशेष प्रसन्न नहीं हैं। प्रतिकूलता और अनुकूलता तो शुभ-अशुभ कर्मों का झूला है। सम्यग्दृष्टि इन संयोगों में हर्ष-विषाद नहीं करता।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

(समत्वबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य-पाप दोनों को इस लोक में ही छोड़ देता है अर्थात् उनसे लिप्त नहीं होता।)

श्रीपाल कुमार और मदनमंजरी का विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। विवाह के बाद राजा वसुपाल ने कुमार को राजदरबार में कोई पद ग्रहण करने के लिए निवेदन किया तो कुमार ने अतिथि सम्मान के लिए पान का बीड़ा देने का थगीधर का उत्तरदायित्व सँभाला। समय चक्र चलता रहा। १५ दिन और १५ रातें बीत गईं तब एक दिन.... *

जहाजों सहित कोंकण देश के तट पर सुरक्षित पहुँचने के बाद धवल सेठ, राजा वसुपाल के समक्ष भेंट लेकर उपस्थित हुए। अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए श्रीपाल कुमार ने धवल सेठ को पान का बीड़ा दिया। धवल ने पान तो ले लिया लेकिन दाता को देखकर उसका सिर चकराने लगा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं आया; लगा कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रहा, कोई भ्रान्ति तो नहीं हो रही? यह श्रीपाल

तो नहीं हो रही? यह श्रीपाल तो नहीं हो सकता; समुद्र में गिरने के बाद जीवित रहने की सम्भावना ही कैसी? वह तो कब का ठिकाने लग गया होगा, किसी जलचर ने उसे अपना ग्रास बना लिया होगा। मगर यह कौन? हूबहू वही का वही! फिर ध्यान से देखा– आँखें तो कह रही हैं यह श्रीपाल ही है और कोई नहीं; लेकिन मन नहीं मान रहा... सेठ की दुविधा देखकर श्रीपाल मन-ही-मन मुस्कराते हैं परन्तु परस्पर बोलते नहीं। राजा से शीघ्र विदा लेकर धवल उल्टे पाँव लौट गया। जाते-जाते द्वारपाल से पूछने लगे– "बन्धु! पान का बीड़ा देने वाला यह व्यक्ति कौन है?" द्वारपाल का उत्तर था– "यह राजा का जँवाई है।" धवल के पुनः पूछने पर कि यह कैसे यहाँ आ मिला! द्वारपाल ने पूरी घटना सुना दी। अब तो धवल की छाती पर साँप लोटने लगे। वे डेरे पर तो आ गए परन्तु मन अभी तक श्रीपाल में ही लगा हुआ है। सोचने लगे– "अहो! श्रीपाल जीवित है! मेरा दुश्मन जीवित है। फिर कोई उपाय करना ही पड़ेगा।"

श्रीपाल ने सदैव सर्वत्र धवल का उपकार किया मगर वह कुटिल आज इन्हें भी शत्रु ही समझ रहा है। जो जीव की स्वार्थपूर्ति में बाधक बनता है, जीव उसे ही अपना शत्रु समझ लेता है। बलिहारी है हमारी समझ की। धवल सेठ श्रीपाल को समाप्त करने की कल्पनाओं में डूबा हुआ है, नाना योजनायें उसके मस्तिष्क में कौंधती है। इसी दुश्चिन्ता का नाम रौद्रध्यान है, सेठ श्रीपाल की हत्या करके प्रसन्न होना चाहता है, वह हिंसा में आनन्द की कल्पना करता है। शास्त्रकारों ने हिंसा में आनन्द मानने वालों को हिंसानन्दी, झूठ बोलने में आनन्द मानने वालों को मृषानन्दी, चोरी में आनन्द

मानने वालों को चौर्यानन्दी और परिग्रह संग्रह में आनन्द मानने वालों को चौर्यानन्दी और परिग्रह संग्रह में आनन्द मानने वालों को परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान का कर्त्ता कहा है। यह रौद्रध्यान नरक गति का कारण है। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान – ये दोनों दुर्ध्यान हैं, इनसे अपनी आत्मा को बचाना चाहिए।

धवल सेठ तो रौद्रध्यान में लीन है, उसका सम्पूर्ण उपयोग उसी में लगा हुआ है। गीत और नृत्य कलाओं में निपुण डूम लोग आकर कब नाच-गान करने लगे इसका उसे ध्यान नहीं। धवल सेठ वहाँ होते हुए भी अभी वहाँ नहीं है; वस्तुतः हम सदैव वहाँ होते हैं जहाँ हमारा मन होता है, शरीर भले ही कहीं हो। नृत्य करते और गीत गाते काफी समय बीत जाने पर भी जब कोई इनाम बख्शीश नहीं मिला तो डूम सरदार हाथ जोड़ते हुए, धवल सेठ के बिल्कुल सामने आकर बोला– "परवरदिगार! क्या हमारी कला आपको रुचिकर नहीं लगी? आपने अभी तक कोई कृपा नहीं की हम पर।" अब सेठ अपने विचारों से उबरे, बोले– "भाई! मैंने तुम्हारी कला-वला नहीं देखी। मैं तो स्वयं एक बड़ी मुसीबत में पड़ा हुआ हूँ। उसकी चिन्ता ही मुझे खाए जा रही है। समझ नहीं पा रहा हूँ कि कैसे छुटकारा पाऊँ?"

डूम सरदार ने विनत भाव से कहा– "स्वामिन्! किससे छुटकारा पाना है? यदि कोई रहस्य की बात न हो तो हमें बताइए; शायद हमसे कोई सेवा बन सके।"

सेठ विचार में पड़ गया। इन्हें बताऊँ या नहीं! ये कुछ कर सकते हैं या नहीं; दरिद्र हैं निर्धन हैं– द्रव्य के लोभ में दुस्साहसी हो सकते हैं, अतः मेरा काम कर भी सकते हैं अतः इनसे कहके तो देखूँ। यह विचार कर ईर्ष्यालू धवल सेठ ने

श्रीपाल की हत्या का अपना मनोरथ व्यक्त करते हुए डूम सरदार से कहा– "देखो! यदि तुम मेरा एक काम कर सको तो मैं तुम्हें भरपूर द्रव्य दूँगा। काम भी तुम्हारे वश का है। यहाँ के राजा का जँवाई (दामाद) मेरा शत्रु है, उसे खतम करना है।" डूम सरदार बोला– "यह कौनसा बड़ा काम है पर इसके लिए..." डूम सरदार कुछ बोलता उससे पहले धवल बोल उठा– "हाँ, इसके लिए मैं तुम्हें मुँह-माँगा द्रव्य दूँगा। पर यह तो बताओ क्या उपाय करोगे?" डूम सरदार ने उत्तर दिया– "उपाय! उपाय बड़ा आसान है। उसे अपनी जाति का बतायेंगे। राजा उसे डूम जानकर उस पर कुपित होगा और स्वयं ही उसे मरवा डालेगा।"

सेठ को यह उपाय पसन्द आया। प्रसन्न होकर उसने अपनी अंगुली से एक कीमती अँगूठी निकाल कर सरदार को दी और बोला– "काम होने पर तुम्हें मालामाल कर दूँगा।" डूम सरदार ने झुक कर सेठ का अभिवादन किया और वह अपने दल को लेकर राजदरबार की ओर आ पहुँचा। पहरेदार के माध्यम से उसने अपनी प्रार्थना मंत्री और राजा तक पहुँचाई कि वे अपनी कला का प्रदर्शन करना चाहते हैं, यदि स्वीकृति मिले तो वे सदल-बदल सेवा में प्रस्तुत हैं।

राजा ने अपने नए जँवाई श्रीपाल कुमार के मनोरंजन के लिए स्वीकृति दे दी तो डूम सरदार अपने दल सहित वहीं आ पहुँचा। उसके दल के स्त्री-पुरुष सभी कलाकारों ने अपनी नृत्य-कला और गायन-कला से सभी को मुग्ध कर लिया। राजा ने प्रमुदित होकर प्रभूत द्रव्य दिया। श्रीपाल कुमार ने भी प्रसन्न होकर कुछ द्रव्य दिया। श्रीपाल कुमार के अपने आसन से उठते ही डूम दल की कुछ स्त्रियाँ आगे बढ़ आईं।

उन्होंने एक विलक्षण दृश्य प्रस्तुत कर दिया। उनमें से एक वृद्धा तो कुमार के गालों और बालों पर हाथ फेरती हुई बोली– "हाय बेटा! तुम इतने दिन कहाँ चले गए थे! तुम्हारे चले जाने से मैं कितनी दुःखी हुई! रो-रो कर मेरी तो आँखों की रोशनी ही कम हो गई!"

एक युवती कहने लगी– "प्रिय प्राणेश्वर! आज बड़ा शुभ दिन है जो आपके दर्शन पा सकी। आप मुझ अभागी को छोड़कर कहाँ चले गए थे?" एक कहने लगी– "भैया! इतने दिन कहाँ रहे! कभी हमारी याद नहीं आई!"

पुरुषों में-से किसी ने कुमार को पुत्र कहा, किसी ने भाई, किसी ने भतीजा। बच्चों में-से कोई गले में झूल गया तो कोई पाँवों में लिपट गया।

इस नयी परेशानी को देखकर भी श्रीपाल शान्तभाव से मौन खड़े होकर सोचते रहे–यह जीवन भी कैसा नाटक है! कभी पाप के दृश्य तो कभी पुण्य के! कभी सुख तो कभी दुःख। कभी धूप तो कभी छाया। कहीं हर्ष तो कहीं विषाद।

श्रीपाल तो निरुद्विग्न मौन खड़े रहे परन्तु उनकी इस चुप्पी ने राजा को और अधिक कुपित कर दिया। राजा क्रोध से आग-बबूला हो उठा। विचारने लगा – अहो! मैंने बड़ी भूल की। इसके कुल-जाति का पता नहीं लगाया। यह तो नीच कुल का निकला। इस दुष्ट ने मेरी पुत्री से विवाह करने का साहस भी कर लिया। धिक्कार है उस निमित्तज्ञानी को जिसने ऐसी सलाह दी। मैंने उस पर विश्वास कर यह अनर्थ कर दिया। इन दोनों को सजा मिलनी चाहिए। राजा ने सेनापति को आदेश दिया कि कुमार को बन्दी बना लिया जाय और उस निमित्तज्ञानी को भी ढूंढ़ कर राजदरबार में उपस्थित किया जाए।

डूम तो अपना प्रयोजन सधते देखकर शीघ्र ही वहाँ से निकल भागे। सारा दरबार किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा हो गया कि यह कैसा अनर्थ हुआ। थोड़ी ही देर में राजा के सैनिक उस निमित्तज्ञानी को भी पकड़कर दरबार में ले आए। उसे देखते ही राजा वसुपाल ने क्रुद्ध होकर कहा– "रे दुष्ट! जिसे तू उच्चकुल का और बड़ा योग्य बताता था वह पुरुष तो मातङ्ग (डूम, चाण्डाल) निकला।" निमित्तज्ञानी ने कहा– "राजन्। इसे मातङ्ग नहीं, मातङ्गपति जानो।" क्रोधी राजा यह बात नहीं समझ सका क्योंकि क्रोध में विवेक की बत्ती गुल हो जाती है, कुछ भी उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता। अत्यन्त रुष्ट होकर राजा ने दोनों को मारने की आज्ञा दे दी।

राजाज्ञा की खबर राजकन्या मदनमंजरी तक भी पहुँची। वह व्याकुल हो उठी। इस भयंकर परिस्थिति को देखकर उसने लज्जा और संकोच का परित्याग कर दिया और वह यथाशीघ्र अपने पिता के समक्ष आ पहुँची और बोली– "पूज्यवर! अपराध क्षमा हो। सच्चाई का पता लगाए बिना आप मेरे पति को प्राणदण्ड की कठोर सजा देने का निर्णय कैसे ले रहे हैं? आप स्वयं ही विचार कीजिए– क्या आपने इतने दिनों में इनके व्यवहार में कुछ अनुचित बातें देखीं? मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि ये पूर्णतः कुलीन और योग्य हैं। इनका रूप, इनकी शालीनता, इनका विनय विवेकयुक्त व्यवहार क्या इस धारण की पुष्टि नहीं करता? आप उतावली में क्रोधाविष्ट हो इस प्रकार का निर्णय मत लीजिए। मेरे जीवन का प्रश्न है। अपने जीवन-धन को मैं यों नष्ट नहीं होने दूँगी। जब तक सच्चाई प्रकट न हो तब तक आपको प्राणदण्ड देने का कोई अधिकार नहीं है।" पुत्री के इन विवेकपूर्ण वचनों को सुनकर

राजा को अपने अविवेक का भान हुआ। वे कुमार से कहने लगे– "तुम अपना परिचय दो।"

राजा के इस कथन को सुनकर श्रीपाल मन्द मुस्कानपूर्वक बोले– "राजन्! पानी पीकर जात क्या पूछना! विवाह-संस्कार के बाद परिचय कैसा! फिर भी आप जानना ही चाहते हैं तो व्यापारी धवल सेठ के जहाजों में मेरी दो पत्नियाँ हैं, उन्हें बुलाकर आप मेरा परिचय प्राप्त कर लीजिए? मैं अपने सम्बन्ध में स्वयं क्या कहूँ।"

राजा ने तुरन्त सैनिकों को आदेश दिया। राजाज्ञा पाकर सैनिक धवल सेठ के पास पहुँचे। धवल की तो सांस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। कुछ उत्तर देते नहीं बना। सैनिकगण मदनसेना और मदन-मञ्जूषा के पास चले गये और उनसे विनयपूर्वक दरबार में चलने की राजाज्ञा निवेदन की। प्रियतम के वियोग को लगभग एक माह होने वाला था, उन्हें देवी की बात याद आ गई। मन पुलकित होने लगा कि अब प्राणप्रिय के दर्शन अवश्य होंगे। थोड़ी ही देर में वे अपनी सेविकाओं सहित राजदरबार में आ पहुँची और परदे में यथायोग्य स्थान पर बैठ गई। राजा ने कुशल पूछने के बाद उनसें कहा कि देवियो! श्रीपाल का परिचय दो।

मदनमंजूषा ने मुनिराज के मुख से जो कुछ सुना था, इतने दिन साथ रहकर जो अनुभव किया था, तथा अपने विवाहादि का सम्पूर्ण प्रसंग सभी कुछ बता दिया। मदनमंजूषा के दिये हुए परिचय से जब राजा वसुपाल को यह ज्ञात हुआ कि अरे श्रीपाल तो मेरी बहन का ही लड़का है अर्थात् मेरा ही भानजा है तो वह हर्ष से झूम उठा। उसने कुमार से अपने अपराध के लिए बारम्बार क्षमायाचना की। निमित्तज्ञानी को भी

बन्धनमुक्त करने का आदेश दिया। उसने पूछा–"तुमने कुमार को मातंगपति कैसे कहा?" निमित्तज्ञानी ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया– "राजन! मातंगपति का अभिप्राय है हाथियों का स्वामी, राजाधिराज। मातंग नाम हाथी का है।" डोम को भी मातंग कहते हैं।

अपनी भूल की क्षमा माँगते हुए राजा ने निमित्तज्ञानी को पुरष्कृत कर उसका सत्कार किया। अपनी पुत्री मदनमंजरी को उसने कहा– "बेटी! तुमने बहुत समझदारी का परिचय दिया। मैं तो क्रोध के जोश में होश ही खो बैठा! भयङ्कर अनर्थ हो जाता।"

राजा ने सैनिकों को भेजकर डूम सरदार को अपने दल सहित पकड़ बुलवाया और उनके इस घिनौने कार्य के लिए उन सबको मरवा देने का आदेश दे दिया। मरण भय से डूम सरदार ने सत्य उगल दिया- "कृपानिधान! जीवनदान मिले। अपराध क्षमा हो। यह हमारा दोष नहीं, हमारे लोभ का दोष है। धवल सेठ ने हमें इन्हें मरवाने के लिए विपुल मात्रा में सम्पत्ति प्रदान की है, बहुमूल्य मुद्रिका भी दी है। अतः हमने यह सब नाटक किया।"

राजा ने सैनिक भेजकर धवल को भी बुलवा लिया। धवल अपनी सफाई में क्या कहता। डूम सरदार ने उसकी नीयत के बारे में पहले ही बहुत कुछ बता दिया था। फलतः राजा ने धवल को और डूमों के दल को मृत्यु-दण्ड दे दिया। अब क्षमाशील श्रीपाल बोले– "राजन! इन डूमों का क्या दोष? इन्हें आप अधिक से अधिक सजा दें भी, तो अपने देश से निकाल दीजिए और धवल सेठ तो मेरे पूज्य हैं, पितृ तुल्य हैं; मैं इन्हीं के साथ जहाजों पर आया हूँ अतः इन्हें क्षमा कर दीजिए।"

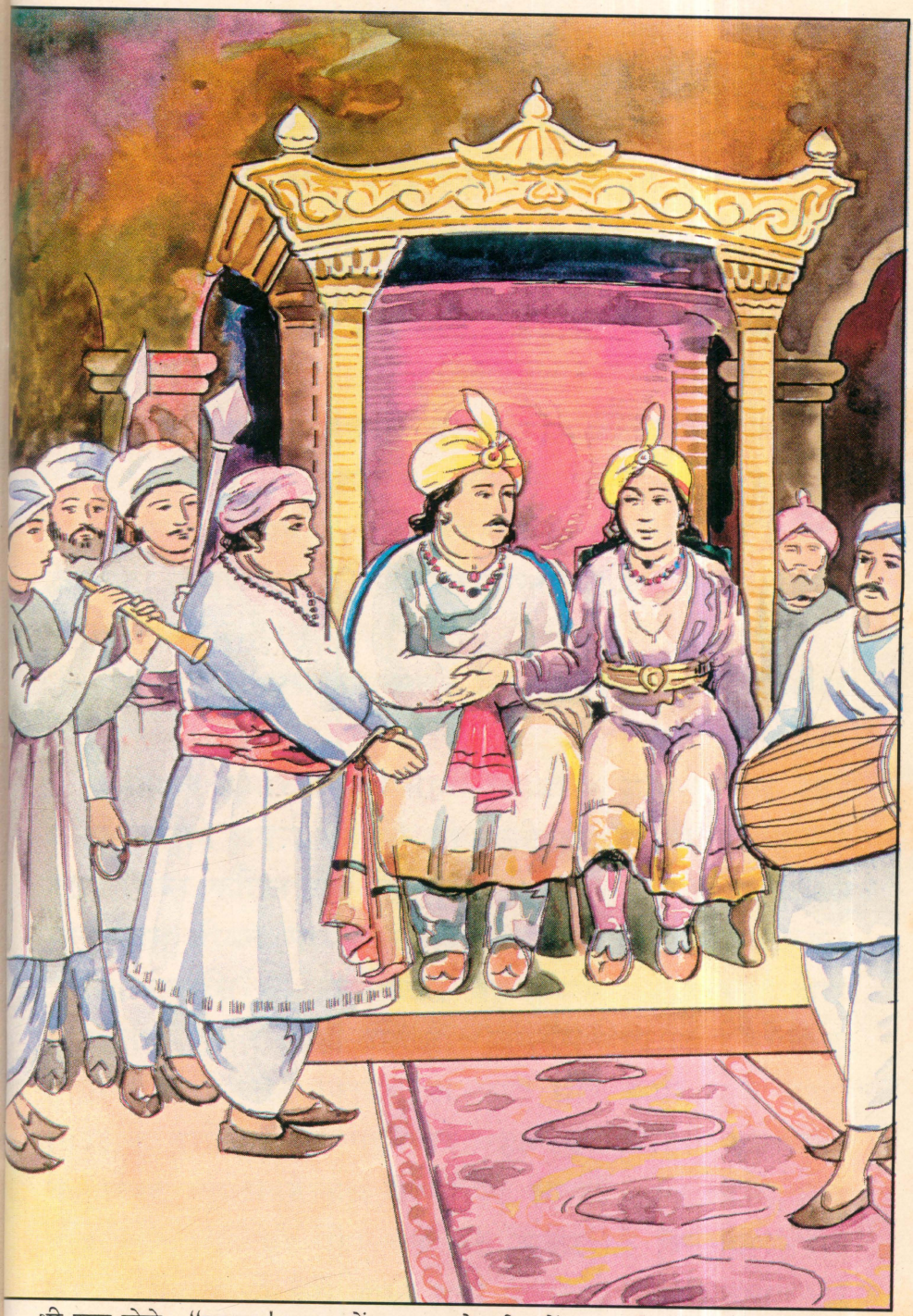

श्री पाल बोले– "राजन ! इन डुमों का क्या दोष ? इन्हें आप अधिक से अधिक सजा दे भी तो अपने देश से निकाल दीजिये और धवल सेठ तो मेरे पूज्य हैं, पितृ तुल्य हैं।

राजा वसुपाल ने श्रीपाल की उदारता की मुक्तकण्ठ से सराहना करते हुए धवल को मुक्त कर दिया और डूम दल को अपने देश से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी।

धवल की करतूतों की जानकारी होने पर भी श्रीपाल कुमार के मन में कालुष्य या विद्वेष के परिणाम प्रकट नहीं हुए। अपने प्राणों पर बन आई, फिर भी उन्होंने क्षमा भाव को नहीं छोड़ा–

क्षमाधर्मः क्षमा यज्ञः, क्षमा वेदाः, क्षमा श्रुतम्।
य एतदेव जानाति, सः सर्वं क्षन्तुमर्हति।।

(क्षमा ही धर्म है, क्षमा ही यज्ञ है, क्षमा ही वेद है और क्षमा ही सम्पूर्ण श्रुत है। जो इसे जानता है, वह सब कुछ क्षमा करने में योग्य है।)

श्रीपाल का क्षमाभाव सबके लिए अनुकरणीय और आदर्श है।

*

श्रीपाल कुमार अपनी तीनों स्त्रियों के साथ सानन्द रहने लगे। उन्होंने धवल सेठ को भी अपने ही पास अपने महल में रखा किन्तु कुटिल सेठ ने कुटिलता नहीं छोड़ी। उसका तो मानो यह जीवन लक्ष्य बन गया था कि श्रीपाल का वध कर उसकी सम्पत्ति का भोग करूँ। वह हमेशा अवसर की तलाश में रहता। एक रात की बात है – लगभग मध्य रात्रि का समय होगा। चारों और निस्तब्धता छाई थी। सभी लोग गहरी निद्रा के वशीभूत थे। पहरेदार महल के मुख्यद्वार पर सजग थे। धवल सेठ अपने कक्ष में पड़े-पड़े करवटें बदल रहे थे, उन्हें नींद नहीं आ रही थी। एक ही चिन्ता थी कि क्या उपाय करूँ? श्रीपाल को कैसे अपने मार्ग से हटाऊँ? सभी उपाय कर चुका, आज तक सफलता नहीं मिली। क्यों न स्वयं ही इसकी

हत्या कर दूँ, आज ही अच्छा अवसर है। सब निद्रामग्न हैं। पहरेदार तो आगे पहरा दे रहा है, मैं पिछवाड़े से श्रीपाल के कक्ष में प्रवेश कर उसका वध कर दूँ तो किसे क्या पता चल सकेगा? बस कपटी, कुटिल धवल उठ बैठा। उसने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए एक तीक्ष्ण धार वाली तलवार उठाई और एक मजबूत मोटी रस्सी लेकर वह प्रासाद के भीतर से उसके पिछवाड़े आ गया। श्रीपाल का शयनकक्ष महल की सातवीं मंजिल पर था। उसने चन्दनगो के पैर पर रेशम की मजबूत डोरी बाँधी फिर उससे मोटी रस्सी जोड़ी और गो को सातवीं मंजिल पर पहुँचा दिया। उसने वहाँ पहुँच कर अपने पैर मजबूती से स्थिर किए। धवल सेठ ने डोरी खींच कर उसकी मजबूती की परीक्षा की और तब हाथ में तीक्ष्ण तलवार लेकर कुमार को मारने के लिए ऊपर चढ़ने लगा।

जीव की रक्षा उसका पुण्य करता है। स्वयं उसका पाप उसी के नाश का कारण बनता है। श्रीपाल कुमार के प्रबल पुण्य से और दीर्घ आयुष्य के कारण आधे रास्ते में ही रस्सी एकदम तड़ाक से टूट गई और पापात्मा धवल सेठ सिर के बल जमीन पर आ गिरे। उनकी तलवार उनके ही वक्ष में जा घुसी। खून की धारा बह निकली; प्राण विकल हो उठे पर अब कौन रक्षा करे? कौन सँभाले? कौन उठाए? सब अपने-अपने स्थान पर निद्रा-मग्न हैं और इधर धवल भी कुछ काल तक छटपटा कर चिरनिद्रा में सो गया– कृष्ण लेश्या के परिणामों से प्राण छोड़ने के कारण मर कर सातवें नरक के मेहमान बने। अन्तिम समय तक अपने उपकारी श्रीपाल–संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव–की हत्या के परिणाम थे। सम्पूर्ण जिन्दगी

धवल सेठ सिर के बल जमीन पर आ गिरे, उनकी तलवार
उनके ही वक्ष में जा घुसी।

उन्होंने अशुभ परिणामों में ही पूरी की, आर्त्तरौद्र ध्यान का ही आलम्बन लिया, अतः नरकगति के पात्र बने।

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवई परिणामा।
परिणामादो बंधो, मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।

परिणामों से ही बन्ध होता है। धवल सेठ श्रीपाल को मार नहीं पाए, स्त्रियाँ और धन भी नहीं ले पाए; केवल तृष्णा ने, लालसा ने, हविश ने, विचारों की कालिमा ने उन्हें कहाँ-का-कहाँ पहुँचा दिया। अत्यन्त तीव्र पुण्य और अत्यन्त तीव्र पाप का फल यहीं इस भव में तत्काल मिल जाता है। धवल सेठ को अपने ही हाथों मरना पड़ा– *"अत्युग्र पुण्यपापाना मिहैव फलमश्नुते।"*

प्रातःकाल हुआ। अनेक लोग एकत्र हो गए। आसपास के उपकरणों को देखकर लोगों का अनुमान पुष्ट होने लगा कि यह कुँवर का वध करने आया था। सब लोग उसे धिक्कारने लगे। श्रीपाल कुमार को सूचना मिली तो वे शीघ्र नीचे आये। धवल सेठ की यह स्थिति देख उन्हें अपार वेदना हुई। सोचने लगे – यह जीव संसार में मोह के वशीभूत हुआ क्या-क्या अनर्थ नहीं करता! प्राणियों के वध में भी नहीं हिचकता, आखिर सेठ को इसका ही पाप ले डूबा। न जाने कैसी गति मिली होगी?

भीड़ में चर्चा चल रही थी– अहो! इसका पाप का घट भर चुका था, आखिर फूट ही गया। कितना कृतघ्न था यह? अपने उपकारी का वध करने में भी इसने संकोच नहीं किया।

श्रीपाल कुमार ने उदासीन मन से धवल का सादर अग्नि संस्कार कराया क्योंकि वह उसे पितृतुल्य महत्त्व देता रहा था। धवल के वियोग ने कुमार को चिन्तनोन्मुख कर दिया –

किसको अपना कहूँ, किसे पराया; किसे शत्रु कहूँ और किसे मित्र? किसे हितैषी मानूँ और किसे द्वेषी; शरीर के बदलने पर सारे सम्बन्ध बदल जाते हैं। शत्रु-पुत्र और पुत्र भी शत्रु बन सकता है। कहीं न कहीं परिणाम तो अपने ही अशुभ कर्मों का भोगना होता है – निमित्त भले कोई भी बन जाए। ज्ञानी की दृष्टि दूर तक जाती है। वह मूल कारण को खोजता है। अज्ञानी की दृष्टि कार्य तक ही सीमित रह जाती है। कुत्ता लाठी पर ही झपटता है, मारने वाले पर नहीं; जबकि सिंह शिकारी पर झपटता है, बन्दूक पर नहीं। यह जीव इस संसार में अपने ही कर्मों का फल पाता है पर सँभलता नहीं।

श्रीपाल कुमार सब क्रिया-कर्म पूरे कराकर अपने स्थान पर गए। फिर उन्होंने धवल के तीनों हितैषी मित्रों को बुलाया और सेठ का सब काम उन्हें सौंप दिया तथा यह भी कह दिया कि धवल जी की एक-एक पाई उनके पुत्र तक पहुँचा देना। कुमार अपनी पत्नियों सहित वहीं सानन्द समय व्यतीत करने लगे। *

(९)

पुण्यशाली श्रीपाल कुमार पुण्य के फलस्वरूप भौतिक समृद्धि के अधिपति बनते जा रहे हैं। उन्हें सर्वत्र सफलता मिलती है, स्थान-स्थान पर उनका अभिनन्दन होता है परन्तु फिर भी इन सबमें उनकी गहरी आसक्ति नहीं। अपनी योग्यता और क्षमता को आँकने के लिए वे हर संघर्ष का दृढ़ता से संकल्पपूर्वक सामना करते हैं और उनका उद्योग व भाग्य उन्हें सर्वत्र पुरस्कृत करता है।

कुण्डलपुर नगर के राजा मकरकेतु और *रानी कर्पूरतिलका की गुणसुन्दरी नामा पुत्री ने यह संकल्प कर*

लिया था कि वह उसी पुरुष का वरण करेगी जो उसे वीणावादन में पराजित कर देगा। अनेक राजकुमार अपने भाग्य की परीक्षा कर चुके थे। कुमार भी वीणावादन में निष्णात थे, अतः उन्होंने इस चुनौती के परिप्रेक्ष्य में अपनी कला का मूल्यांकन करना चाहा।

कुमार विनयपूर्वक प्रतिदिन प्रातः और रात्रि काल में नवपद का स्मरण किया करते थे, यह मानो उनके जीवन का क्रम ही बन चुका था। यह आस्था उनमें उत्साह और बल भरती थी। वस्तुतः आत्मिक बल ही सच्चा बल है। आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और बल का भण्डार है। पर यह अनन्त चतुष्टय शुद्धात्मा में ही प्रकट होता है, संसार दशा में उसकी पूर्णता नहीं देखी जाती।

श्रीपाल कुमार इष्ट स्मरण कर निद्रामग्न हुए। रात्रि में देव द्वारा उन्हें एक हार दिया गया–जिससे इच्छित आकृति बनाने की योग्यता, विद्या, आकाशगमन आदि उन्हें प्राप्त हुई। वे आश्वस्त हुए। प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उन्होंने नवपद का ध्यान करते हुए शय्या का त्याग किया और प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त हो कुण्डलपुर जाने की तैयारी की।

वे जिस दिन कुण्डलपुर पहुँचे उसी दिन अनेक वीणा वादकों की परीक्षा थी। विशाल मण्डप तना हुआ था। राजकुमारी भी उपस्थित थी। अनेक राजकुमार भविष्य की आशा संयोये हुए अपनी कला से राजकुमारी के चित्त को मुग्ध करने के लिए आतुर थे। सबको अपनी-अपनी वीणावादन कला प्रदर्शित करने का अवसर मिला, परन्तु सभी के आशादीप बुझते चले गए। राजकुमारी ने किसी एक को भी कुशल वीणावादक नहीं माना।

श्रीपाल कुमार को भी अवसर मिला। राजकुमारी ने उन्हें अपनी वीणा बजाने को दी। उन्होंने वीणा हाथ में लेते ही उसके दोष बता दिये कि "इसकी तांत अशुद्ध है, तुम्बड़ी गली हुई है, दण्ड भी युक्त नहीं है, ग्राममूर्च्छना-नाद हेतु यह वीणा अयोग्य है।" यह सुनकर राजकन्या ने जान लिया आज मेरे भाग्य का वीणा में निपुण प्रधान पुरुष आ गया है। कुमार ने ठीक-ठाक करके वीणा बजाई। कुमार का वीणावादन इतना प्रभावशाली और मस्त करने वाला था कि सभी अभिभूत हुए। राजकन्या ने कुमार के गले में वरमाला डाली। राजा आदि सभी परिजन प्रसन्न हुए। परिचय के बाद महोत्सवपूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ। श्रीपाल जैसे पति को पाकर गुणसुन्दरी अत्यन्त प्रसन्न हुई।

आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के शुभ दिन कंचनपुर नगर के राजा वज्रसेन ने अपनी लाड़ली पुत्री त्रिलोकसुन्दरी के लिए स्वयम्वर आयोजित किया। त्रिलोकसुन्दरी ने अपनी सखी के साथ मण्डप में प्रवेश किया। उपस्थित राजकुमारों में उसने एक दिव्य रूप देखा जो अन्य सभी को कुबड़े (कुब्ज) के रूप में दिखाई दे रहा था। श्रीपाल कुमार ने ही विचित्र वेश बना रखा था। त्रिलोकसुन्दरी की आँखों में वह रूप बस गया··· क्रमशः राजकुमारों का परिचय पाते-पाते जब वह इनके समीप पहुँची, तो उसने इनके गले में वरमाला डाल दी।

यह अद्भुत वरण देखकर सभी रूपवान राजकुमार आगबबूला हो उठे, चिल्लाने लगे कि यह हमारा अपमान है। निराश और हताश हुए राजकुमार कुब्ज के भाग्य से ईर्ष्या करने लगे, कुछ तो इतने उत्तेजित हो उठे कि वे श्रीपाल कुमार पर टूट पड़े। कुमार ने भी अपना शौर्य दिखाया तो सब भाग

खड़े हुए। वज्रसेन राजा ने कुब्ज का सत्कार किया। कुमार ने भी अपना असली रूप प्रकट किया। सभी का हृदय प्रसन्नता से भर उठा। श्रीपालकुमार और त्रिलोकसुन्दरी का विवाहोत्सव समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। *

जीव का पुण्य प्रबल होता है तो उसे कदम-कदम पर सफलता मिलती है। श्रीपालकुमार के शुभकर्म समय-समय पर अपना अद्‌भुत प्रभाव दिखा रहे हैं।

एक दिन एक आगन्तुक ने कुमार से निवेदन किया– "हे स्वामी! दलपत्तन नामक विशाल नगर के राजा धरापाल की चौरासी रानियों में गुणमाला नामकी एक पटरानी है। उसके पाँच पुत्र हैं– हिरण्यगर्भ, रत्नगर्भ, जगच्चन्द्र, शिवचन्द्र और कीर्तिचन्द्र। इनके बाद शृङ्गारसुन्दरी नाम की एक रूपमती और बुद्धिमती कन्या है। उसकी पाँच सखियाँ हैं–पण्डिता, विचक्षणा, प्रगुणा, निपुणा और दक्षा। ये सभी सखियाँ प्रखर बुद्धिवाली हैं, जिनधर्म में अनुरक्त हैं। एक समय राजकन्या ने अपनी पाँचों सखियों के साथ यह प्रतिज्ञा की कि अपन सब एक ही वर वरेंगी जो कि निष्कपटता से जिनधर्म में अनुरक्त हो। सबने यह बात स्वीकार कर ली, फिर शृङ्गारसुन्दरी ने कहा अपने हृदयगत भावों को समस्याओं के माध्यम से जो कह दे, वही अपना पति हो सकता है, अन्य नहीं। यह बात सर्वत्र फैल गई अतः अनेक विद्वानों ने आ-आकर अपना भाग्य आजमाया है परन्तु समस्याओं की पूर्ति आज तक कोई नहीं कर सका है। अनेक राजकुमार तो वहाँ नियमित शास्त्राभ्यास करने लगे हैं! हे कुमार! मुझे विश्वास है कि आप अपनी योग्यता से समस्याओं की पूर्ति कर उन कन्याओं का वरण कर सकेंगे।"

आगन्तुक के मुख से यह सब सुनकर कुमार के मन में फिर एक बार अपनी क्षमता-योग्यता को आँकने की कामना बलवती हो उठी। उन्होंने दलपत्तन जाने का निश्चय कर लिया और वे थोड़े ही समय में राजा के महल में जा पहुँचे। राजकन्या के कक्ष के बाहर एक सिंहासन रखा हुआ था, कुमार उसी पर जा बैठे। सखियों सहित राजकन्या श्रीपालजी का रूप देखकर हर्षित हुई और विचारने लगीं कि यदि यह भव्य पुरुष हमारी समस्याओं की पूर्ति कर दे तो इसका सानिध्य पाकर हम कृतकृत्य हो जायेंगी। कुमार ने कहा–आपके समस्यापद प्रकाशित कीजिए। तब राजकन्या की प्रेरणा से क्रमशः सखियाँ इस प्रकार पूछने लगीं–

पण्डिता बोली– *"वाञ्छाफलं चित्तगतं भवेच्च"* अर्थात् चित्त में रहा हुआ वाञ्छित फल किससे प्राप्त होता है?

अब कुमार के सम्मुख समस्या आ गई क्योंकि स्वयं राजकुमारी ने प्रश्न न पूछ कर सखी के माध्यम से प्रश्न किया था। कुमार ने प्रश्न सुनकर विचार किया कि राजकुमारी ने अपने मुख से समस्या पद नहीं कहा तो मुझे भी अन्य के मुख से पूर्ति करानी चाहिए। उन्होंने पास ही खड़े स्तम्भ पर विराजित पुतली के सिर पर हाथ रखा। वह शीघ्र ही उत्तर देने लगी–

"ये सिद्धचक्रं परमं पवित्रं, ध्यायन्ति नित्यं निजमानसे हि।
तेषां नराणांच तथा हि स्त्रीणां, वांछाफलं चित्तगते भवेच्च।।"

(हृदय में, परमपवित्र सिद्धचक्र का नित्य ध्यान करने वाले स्त्री-पुरुष सदैव चित्त में रहे हुए वांछित फल को प्राप्त करते हैं।)

जो कोई स्त्री-पुरुष शुद्ध मन से, पवित्र भावनाओं से इष्ट

स्मरण, वन्दन-पूजन-आराधन, दान आदि शुभ क्रियायें करते हैं; उनकी मनोकामनाएँ सदैव पूर्ण होती हैं क्योंकि आराध्य स्मरण के क्षणों में कषायों की मन्दता रहती है, पुण्यबन्ध होता है और पुण्योदय से मनोनुकूल पदार्थों की प्राप्ति होती है।

विचक्षणा बोली– *"अन्यच्च लोके विलापतुल्यम्"* अर्थात् इस लोक में बाकी सब विलाप के तुल्य हैं तो सारभूत क्या पदार्थ है?"

पुतली ने ही उत्तर दिया–

देवे जिनेशो गुरुषु यथार्थ, वक्ता हि धर्मेषु दयाप्रधानः।
मन्त्रेषु सारं परमेष्ठिमंत्रं, अन्यच्च लोकेत्र विलापतुल्यम्।।

(देवों में वीतरागदेव, सत्य उपदेश देने वाले गुरु, दयाप्रधान धर्म, मंत्रों में नमस्कार मंत्र ही साररूप है–अन्य सब इस लोक में विलापतुल्य है।

देव-गुरु-धर्म ही जगत् में सारभूत है। गुरु ज्ञानरूपी मशाल से वीतराग स्वरूप प्रकट करते हैं और भव्य जीव उस स्वरूप की प्राप्ति के लिये धर्म का अवलम्बन लेते हैं। स्वरूप प्राप्ति होने पर ही इस भवभ्रमणा का अन्त हो पाता है। यही बात सारभूत है, बाकी सब विलाप। यथार्थ ज्ञानाभाव से यह जीव भौतिक पदार्थों में और प्राणियों में मोह करता है जिसका परिणाम केवल दुःख, दुःख और दुःख ही है।

प्रगुणा की समस्या पूर्ति थी– *"आत्मा हि येन सफलीभवेच्च"* आत्मा जिससे निश्चय ही सफल होता है, वह क्या है ?"

पुत्तलिका ने तुरन्त कहा–

आराधय त्वं सुगुरुं सुदेवं, पात्रेषु दानं कुरु सत्सु सङ्गम्।
तीर्थेषु यात्राञ्च विधेहि नित्यं, आत्मा हि येन सफलीभवेच्च।।

(सुगुरु और सुदेव की आराधना से, सुपात्र में दान देने से, सत्पुरुषों के समागम से और तीर्थवन्दना से आत्मा निश्चय सफल होता है।)

सर्वज्ञ, निरंजन, निराकार, देवाधिदेव सिद्ध प्रभु और अरहन्त भगवान् सच्चे देव हैं। समीचीन सत्य को जान कर जो आत्मदृष्टा केवली प्रणीत मार्ग पर चल पड़े हैं वे ही आचार्य, उपाध्याय और साधु सद्गुरु हैं। ये ही उत्तम पात्र हैं इन्हीं के लिए चतुर्विध दान प्रदान कर अपना वैभव सफल करना चाहिए। इन्हीं पुरुषों के सत्संग में रह अपनी आत्मा को सफल बनाना चाहिए। तीर्थवन्दना से ही परिणामों में बड़ी निर्मलता और सरलता प्रकट होती है। एक सामान्य श्रावक को इन सब क्रियाओं का विधिपूर्वक नियम से पालन करना चाहिए।

अब निपुणा की बारी थी। उसने कहा– "*यावद्वि-धात्रा लिखितं ललाटे*"। जितना विधाता (भाग्य) ने ललाट में लिख दिया होता है उतना ही होता है। पुतली का उत्तर था–

हे चित्त! खेदं परिमुंच नित्यं, चिन्तासमूहे न कुरुष्व जीवम्।
फलं भवेदत्र परत्र तावद्, यावद्विधात्रा लिखितं ललाटे।।

(हे चित्त! तू खेद का सदैव के लिए त्याग कर। चिन्ता में अपना जीवन नष्ट न कर। इस भव में ओर उस भव में भी उतना ही फल मिलेगा जितना विधाता–कर्म, भाग्य–ने ललाट में लिख दिया है।)

जब कभी जीव पर सङ्कट आए, उसे कार्य में सफलता न मिले तब हताश, निराश हृदय को तोष प्रदान करने के लिए ऐसा चिन्तन आवश्यक है– हे जीव! चिन्ता छोड़! जितना तेरे भाग्य में है उतना ही तो मिलेगा। आज प्रायः लोग कह

देते हैं कि कर्म अथवा भाग्य की बात करके व्यक्ति को प्रमादी और पुरुषार्थहीन बनाया जाता है परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। किसी भी कार्य में पाँच बातों का होना जरूरी है, जब तक ये पाँचों समवाय नहीं होते तब तक कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। ये पाँच समवाय हैं– स्वभाव (प्रकृति), संयोग या निमित्त, पुरुषार्थ, काल या काल लब्धि या नियति और प्रारब्ध या भवितव्य।

इन पाँचों का एक-दूसरे के साथ गुंथे रहना ही वस्तु व्यवस्था है। किसी एक अंग को भी हटा दिया जाए तो कार्य की गति रुक जाए। स्वभाव न हो तो परिवर्तन ही न हो, कार्य कैसे होगा, चाहे जोर लगालें सब मिलकर। यदि निमित्त न हो तो परिवर्तन ही न हो। काल नामक सामान्य निमित्त न हो तो मिट्टी में सामान्य परिवर्तन न हो और चक्र आदि विशेष निमित्त न हों तो उनमें घटरूप विशेष परिवर्तन न हों, स्वभाव या पुरुषार्थ क्या करेंगे बेचारे? यदि पुरुषार्थ न हो तो प्रवृत्ति ही न हो, बैठे रहें स्वभाव, निमित्त तथा नियति हाथ पर हाथ रखे। यदि नियति न हो तो हृदय में काम करने की रुचि ही जागृत न हो और उसके अभाव में पुरुषार्थ का जन्म ही न हो। यदि भवितव्य न हो तो कार्य ही न हो क्योंकि कार्य का नाम ही तो भवितव्य है। जब कार्य ही नहीं तो सब अंगों का मिलना व्यर्थ। पाँचों अंगों से समवेत यही है वस्तु की स्वतन्त्र कार्य व्यवस्था।

दक्षा बोली–"*तस्यैव दासाश्च त्रिलोकलोकाः*"। तीनों लोक उसी के दास होते हैं, ऐसा कौन है? पुतली का उत्तर था–

यत्सञ्चितं पूर्वजजन्मनीह, तेनैव पुण्येन भवन्ति कामाः।
भोगाश्च राज्यानि शिवेन्द्ररौधाः, तस्यैव दासाश्च त्रिलोकलोकाः।।

(पूर्वभव में जो संचित किया है, उसी पुण्य से इस भव में भोग, समृद्धि, राज्य, मोक्ष-लक्ष्मी आदि जिसको प्राप्त होते हैं, उसी महापुरुष के तीनों लोक दास होते हैं।)

कुमार के इन सारगर्भित उत्तरों को सुनकर शृंगार-सुन्दरी अपनी सखियों सहित अत्यन्त प्रमुदित हुई। संकल्पानुसार उन सबका विवाह श्रीपाल कुमार के साथ महोत्सवपूर्वक सम्पन्न हुआ। *

राधावेध एक कला है जिसमें एक स्तम्भ के पास आठ चक्र लगाए जाते हैं जो यन्त्र के योग से घूमते हैं। उनके ऊपर राधा नाम की एक कठपुतली लगाई जाती है, जो बड़े वेग से घूमती है। उसके नीचे तेल का भरा एक कड़ाह रखा जाता है, उसमें उस पुतली का प्रतिबिम्ब गिरता है। तीव्र वेग से घूमती हुई उस पुतली की दाहिनी आँख को तेल में पड़ते हुए प्रतिबिम्ब को देखकर बींधना होता है।

कोल्लागपुर नगर के राजा पुरन्दर की सर्वगुण सम्पन्न पुत्री जयसुन्दरी का सङ्कल्प है कि जो राधावेध सिद्ध करेगा, वह उसी का वरण करेगी। कौतूहलप्रिय श्रीपाल कुमार को जब यह ज्ञात हुआ तो फिर उन्हें अपनी क्षमता परखने का एक अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने अपनी योग्यता से राधावेध सिद्ध किया तब जयसुन्दरी ने उनके कण्ठ में वरमाला पहनाई। राजा ने असाधारण धूमधाम से उनका विवाह किया। दोनों सानन्द रहने लगे। *

एक समय प्रतिष्ठानपुर के राजा वसुपाल– श्रीपाल कुमार के मामा ने अपना दूत भेजकर श्रीपाल कुमार को बुलवाया। कुमार अपनी सभी पत्नियों सहित हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, धनधान्यादि का संग्रह कर एक विशाल सेना के संरक्षण में

प्रतिष्ठानपुर पहुँचे। वसुपाल ने कुमार का हार्दिक स्वागत अभिनन्दन किया। तथा एक महोत्सव आयोजित कर अनेक राजाओं के समक्ष अपने भानजे (कुमार) को राजगद्दी पर प्रतिष्ठित किया। श्रीपाल कुमार जो कभी श्वसुर पक्ष से जाने जाते थे, आज अपने गुणों के कारण विख्यात हैं। आज उनकी यश सौरभ दूर-दूर तक फैल रही है। उनके शौर्य का शंखनाद दूर-दूर तक सुनाई देता है। अनेक राजा उनके चरणों में नतमस्तक होते हैं। कुछ काल यहाँ ठहर कर श्रीपाल कुमार ने अपने विशाल दलबल सहित उज्जयिनी की ओर प्रस्थान किया। *

(१०)

तीर्थस्वरूप अपनी जननी के दर्शन के लिए तथा अपनी उपकारिणी प्राणप्रिया मदनसुन्दरी से मिलने के लिए कुमार ने प्रतिष्ठानपुर से प्रस्थान कर सोपारपत्तन में सैन्य सहित पड़ाव डाला। राजा श्रीपाल के आगमन की सूचना पाकर नगर का मंत्री परेशान अवस्था में आकर उनके चरणों में नत हुआ। राज्यमंत्री की ऐसी दशा देखकर करुणाशील श्रीपाल ने परेशानी का कारण पूछा तो मंत्री ने बताया कि हे राजन्! यहाँ के राजा महासेन की गुणवती पुत्री तिलकसुन्दरी को अचानक ही सर्प ने काट लिया है। राजा व अन्य प्रजाजन उसके शव को लेकर दाह-संस्कार हेतु श्मशान गये हुए हैं। इतना सुनते ही दयालु श्रीपाल शीघ्र ही मंत्री को साथ लेकर श्मशान पहुँचे। उन्होंने मन-वचन-काय की एकाग्रता स्वरूप नवपद का स्मरण किया और कन्या को देखने की इच्छा व्यक्त की। कन्या के पिता राजा ने कहा– "महाराज! मृतक कन्या

को क्या देखना है?" उत्तर मिला– "बन्धुवर! सर्प के विष से इतनी गहरी मूर्च्छा व्याप्त हो जाती है कि प्राणी मृतक सदृश ज्ञात होता है, परन्तु मरता नहीं है। तब राजा आदि ने उसके बन्धन खोले और कन्या महाराज श्रीपाल को दिखाई।

श्रीपाल कुमार ने नवपद महामंत्र से मंत्रित निर्मल जल उस पर छिड़का तो कुछ ही क्षणों में वह कन्या उठ बैठी और अपने पिताजी से प्रश्न करने लगी कि हे पूज्यवर! ये सब लोग यहाँ पर क्यों एकत्र हुए हैं? राजा ने सारी घटना उसे सुनाई और महाराजा श्रीपाल का आभार माना। कन्या और राजा ने श्रीपाल के चरणों में झुककर नमन किया।

राजा महासेन ने अपनी प्रिय बेटी को जीवन प्रदान करने वाले श्रीपाल के हाथों में ही तिलकसुन्दरी का जीवन सौंप दिया। विवाहोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। *

खन्धार, हल्लार, मरहट्ठ, सोरठ आदि देशों की सीमाओं को पार करते हुए महाराजा श्रीपाल अपनी सेना सहित उज्जयिनी नगरी के समीप आ पहुँचे। वन प्रदेश में सेना ने पड़ाव डाल दिया। जंगल एक नगर के रूप में दिखाई देने लगा। राजा प्रजापाल ने जब अपने दूत के मुँह से यह सुना कि परद्वीप के किसी राजा ने आकर नगरी के बाहर सेना सहित पड़ाव डाल रखा है, तो उसने शीघ्र ही किले को सजा कर तैयार करवाया। वहाँ पर तृण, धान्य, काष्ठ, जल, वस्त्र, धनादि का संग्रह किया। शस्त्र आदि एकत्र किये, वीर सुभटों को तैयार किया। श्रेष्ठिगण, सार्थपति और तमाम प्रजा के लोग आकुल-व्याकुल होकर बहुत भयभीत हुए। राजा ने अपनी व प्रजा की सुरक्षा के लिए सेना तैनात की।

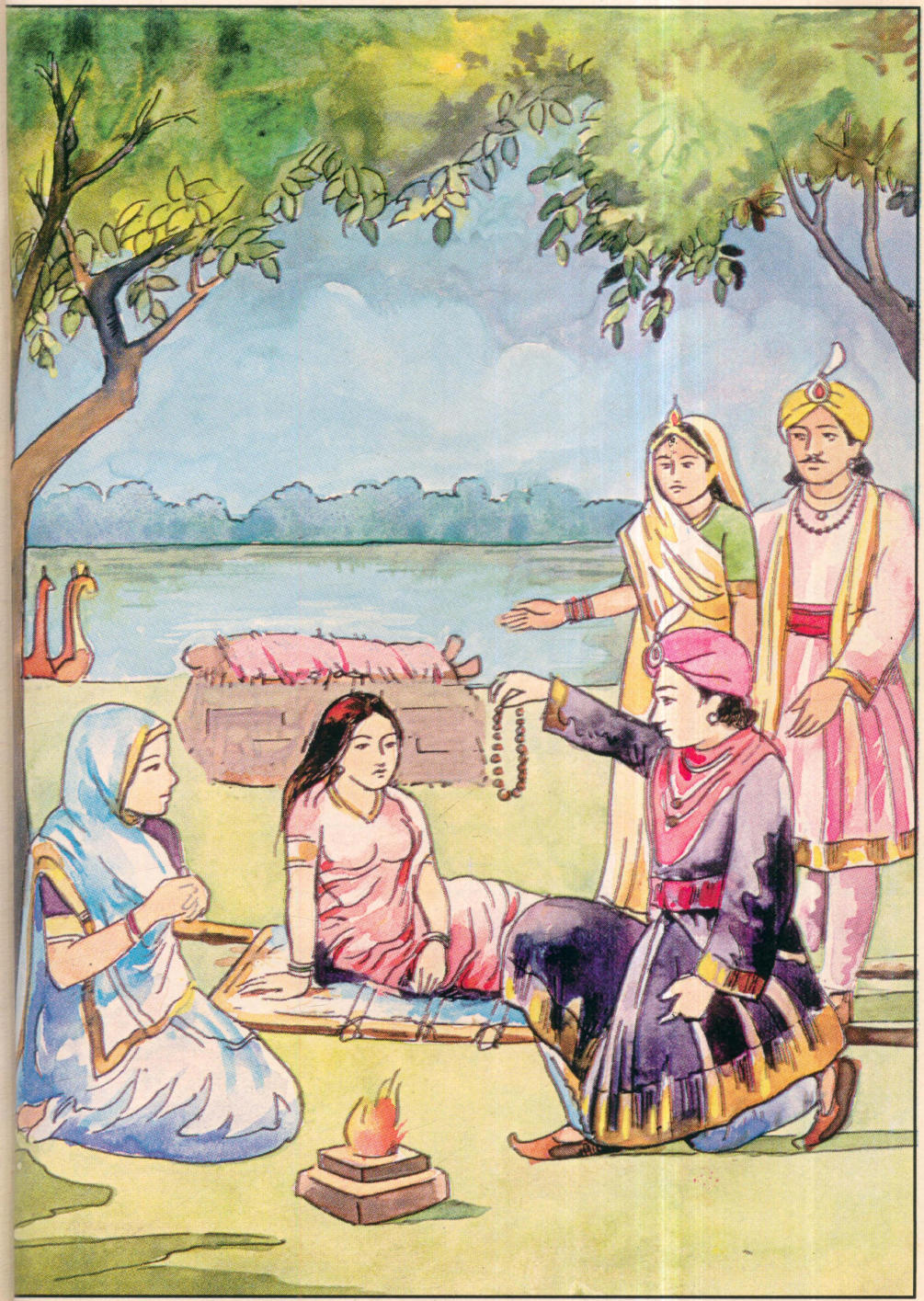

श्रीपाल कुमार ने नवपद महामंत्र से मंत्रित निर्मल जल उस पर
छिड़का तो कुछ ही क्षणों में वह कन्या उठ बैठी।

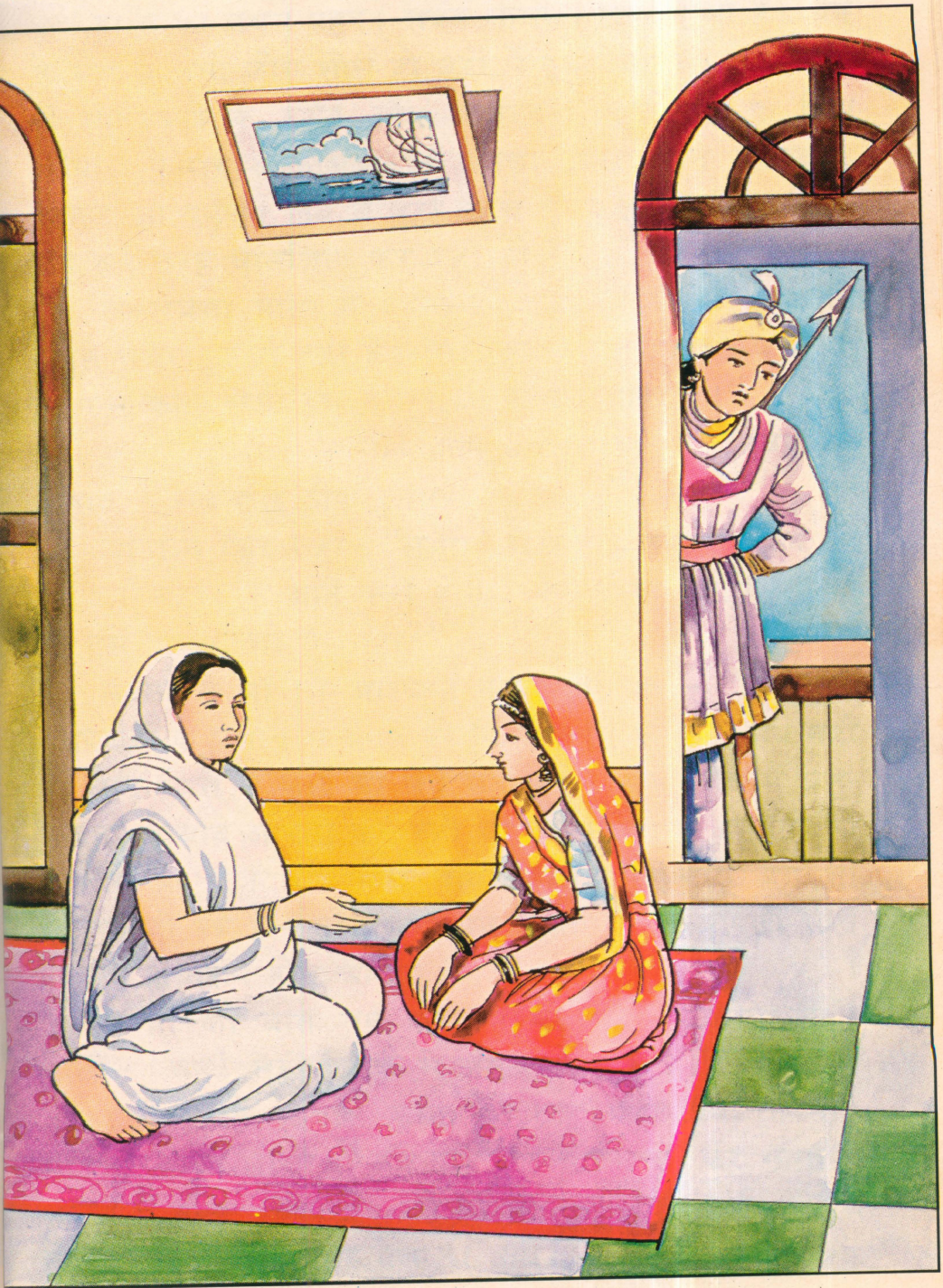

माता ने कहा–सुभगे ! मेरा पुत्र, तेरा सौभाग्य भी तो यहाँ नहीं ! न जाने कहाँ होगा ? कैसा होगा ? यहाँ आयेगा तो हमें पाएगा भी या नहीं ?

रात्रि का प्रथम पहर। सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ है। शत्रु के भय से सभी लोग शीघ्र ही घरों में दुबक गए हैं। ऐसे समय में मातेश्वरी के दर्शन और प्राणेश्वरी से मिलने के लिए श्रीपाल कुमार आकाशगामिनी विद्या द्वारा अपने मकान के निकट जा पहुँचे। जब वे वहाँ पहुँचे तो कक्ष के भीतर सास-बहू इस तरह वार्तालाप कर रही थीं–

कमलप्रभा माता ने मदना को कहा– "मदने! आज तो बहुत घबराहट हो रही है। सभी कह रहे हैं कि अजेय शक्ति सम्पन्न कोई राजा इस नगरी को जीतने आया है।"

मदना बोली– "माता! आप धैर्य धारण करें। नवपद के प्रभाव से सब कुछ ठीक होगा।"

माता ने फिर कहा– "सुभगे! मेरा पुत्र, तेरा सौभाग्य भी तो यहाँ नहीं; न जाने कहाँ होगा? कैसे होगा? यहाँ आएगा तो हमें पाएगा भी या नहीं?"

मदना ने माँ को आश्वस्त करते हुए कहा– "हे मात! नवपदजी के प्रभाव से अपने को किसी तरह का कोई भय नहीं है, आप चित्त में कुछ भी खेद मत करो। अभी जब मैं प्रभु-वन्दना के बाद आरती कर रही थी तब मुझे कुछ अपूर्वता का आभास हो रहा था। मेरी बायीं आँख और बायें अंग भी स्फुरित हो रहे हैं– माँ! मेरा मन कहता है कि आपको शीघ्र ही पुत्र के दर्शन होने चाहिए।"

मदना की बात सुन कर माँ को बड़ी प्रसन्नता हुई। बोली– "बहू! तेरी जिह्वा में अमृत का वास हो।"

इसी समय श्रीपाल कुमार ने द्वार खटखटाया– "माँ! माँ! दरवाजा खोलो।" यह परिचित ध्वनि सुन कर माता ने मदना से कहा– "मयणा! यह तो श्रीपाल की ही ध्वनि मालूम होती है, द्वार खोल कर देख तो सही।"

मदनसुन्दरी ने शीघ्रता से द्वार खोला – कक्ष के भीतर प्रवेश कर श्रीपाल माता के चरणों में प्रणत हुए। पुत्र से भेंट कर माता कमलप्रभा का रोम-रोम पुलकित हो उठा। गद्‌गद् स्वर में आशीर्वाद देते हुए माँ ने पुत्र को उठाया तो मदनसुन्दरी ने श्रीपाल कुमार के चरण स्पर्श करते हुए कहा– "धन्य भाग्य! आज का दिन बड़ा शुभ है, जो आपका मिलन हुआ।"

श्रीपाल– "माँ! आओ, चलो; देखो तो – आपके आशीर्वाद से जंगल में ऋद्धि-सिद्धि बिखरी पड़ी है।"

मदना– "तो क्या जिसके बारे में नगर में चर्चा है, वह सारा सैन्य-बल आपके ही साथ है। सारे नगरवासी चिन्तित हैं कि कोई राजा आक्रमण करने के लिए नगर के बाहर डेरा डाले है।"

श्रीपाल– "मयणा! वह मेरा नहीं। तुम्हारे आराध्य के समर्पण भाव से प्राप्त पुण्य परिचय है। उस लक्ष्मी से सर्वोपरि लक्ष्मी तो तुम हो जिसके संयोग से मेरा जीवन ही बदल गया।"

श्रीपाल कुमार माँ और मदना को ले कर शीघ्र ही अपने पड़ाव पर आ पहुँचे। मातेश्वरी कमलप्रभा को रत्नजटित सिंहासन पर आसीन किया और निवेदन किया कि माँ यह सारा वैभव, सम्पत्ति आपके प्रसाद से प्राप्त हुए हैं। कुमार ने माँ की बड़ी विनय की। यह देख कर पाँच सखियों सहित आठ रानियों ने माता कमलप्रभा के चरणों में अभिवन्दन किया और बाद में मदनसुन्दरी को नमन किया।

माता कमलप्रभा अपने पुत्र को इस प्रकार पाकर अत्यन्त आनन्दित हुई। उसने हृदय से सबको आशीर्वाद दिया।

विद्याधर की पुत्री माँ को श्रीपाल की सारी जीवनी सुनाने लगी। इसी बीच एकान्त पा श्रीपाल ने मदनसुन्दरी से पूछा– "हे प्रिये! अब तेरे पिता के साथ क्या करना चाहिए?" श्रीपाल राजाधिराज है; महापराक्रमशाली हैं; बुद्धि वैभव से सम्पन्न हैं तथापि मदना से परामर्श कर रहे हैं – कहो प्रिये! अब क्या करना?

कृपा अथवा स्नेह माँगने से नहीं कर्तव्यनिष्ठा से मिलता है। जैसे बीज में वृक्ष, तन्तु में वस्त्र और फूल में फल छिपा है, वैसे ही कर्तव्य में कृपा छिपी है। जगत् में अधिकांश व्यक्ति अपना कर्तव्य निर्वाह करना नहीं चाहते, बस कृपा चाहते हैं, आशीर्वाद चाहते हैं। जहाँ कर्तव्य की बात होती है; वहाँ स्वार्थबुद्धि, अहंबुद्धि आड़े आ जाती है। सबसे प्रतिकूल चलते हैं मगर चाहते हैं आदर-सत्कार, सम्मान, आशीर्वाद। अपने स्वामी का सब प्रकार से ध्यान रख कर नौकर भी कृपापात्र या स्नेहपात्र बन जाता है तो एक बेटा, बेटी या बहू क्यों नहीं?

मदनसुन्दरी ने अपने विनय-विवेकपूर्ण व्यवहार से, कर्तव्यनिष्ठा से, धार्मिक दृढ़ आस्था से, सन्तुलित बुद्धि से सास और पति दोनों का हृदय जीत लिया है। माता का रोम-रोम उसे आशीर्वाद देता है और पति का रोम-रोम उस पर अगाध प्रेम की वर्षा करता है।

मदना कहती है– "स्वामिन्! पूज्य पिताजी ने सत्य को स्वीकार तो कर लिया है लेकिन फिर भी कर्म-सिद्धान्त में उनकी आस्था सुदृढ़ करने के लिए आप इन्हें कन्धे पर कुठार और मुँह में घास लेकर बुलवाइये।"

प्रातःकाल महाराज श्रीपाल ने निश्चित किया हुआ सन्देश दूत के साथ राजा प्रजापाल के पास प्रेषित किया। दूत ने

जाकर सविनय नमस्कार करते हुए निवेदन किया कि मेरे महाराज ने कहलवाया है कि "या तो आप कन्धे पर कुठार और मुँह में घास लेकर स्वयं उपस्थित हों या फिर युद्ध के लिए तैयार रहें।"

दूत के वचन सुन कर राजा प्रजापाल कुपित हो उठे। बोले– "कौन आएगा? मैं! इस अवस्था में मुझे बुलाने वाला तुम्हारा राजा है कौन?" बुद्धिनिधान मंत्री अब तक श्रीपाल की शक्ति और सेना के सम्बन्ध में राज्य के गुप्तचरों से जान चुका था। अतः अत्यन्त विनीत भाव से राजा को समझाने लगा– "हे स्वामिन्! यह समय क्रोध करने का नहीं है। मुझे गुप्तचरों से ज्ञात हुआ है कि आगन्तुक राजा सैन्य बल और शक्ति साधन में हमसे कहीं बढ़ कर है। हे नाथ! यदि आप संग्राम करेंगे तो व्यर्थ ही राज्य की युवा-शक्ति नष्ट होगी। हजारों गोदें सूनी हो जाएँगी। हजारों ललनाएँ विधवा हो जाएँगी। इतना खो कर भी यदि हम विजयी हो सकते तो भी ठीक था परन्तु इस प्रबल शत्रु से पार पाना मुश्किल है। यदि हम युद्ध हार गये तो हमारी कीर्ति कलंकित होगी। इससे तो यही अच्छा है कि हम शत्रु राजा के सन्देश का आदर करें।"

राजा प्रजापाल को मंत्री का यह कथन विचारपूर्ण लगा। उन्होंने भेंट दे कर दूत को विदा किया। दूसरे दिन भोर होने से पूर्व ही राजा प्रजापाल सामान्य वेष में कन्धे पर कुठार और मुँह में घास ले कर चल पड़े। श्रीपाल कुमार को राजा के आगमन की सूचना मिली। वे तुरन्त ही अगवानी हेतु पहुँचे। उन्होंने देखते ही राजा का वह वेष दूर करवा दिया और नवीन वस्त्रालंकार पहना कर बहुमानपूर्वक अपने पास बैठाया। मदनसुन्दरी भी आ पहुँची। पिताजी के चरण स्पर्श

दिन भोर होने से पूर्व ही राजा प्रजापाल सामान्य वेश में
कन्धे पर कुठार और मुँह में घास लेकर चल पड़े

कहाँ मालव, कहाँ शङ्खपुर, कहाँ बब्बर कहाँ नट्ट। सुरसुन्दरी नचाविये, पड़ो देवसिर दट्ट।। सुरसुन्दरी द्वारा कहे गए इस दोहे ने सबको चौंका दिया।

करते हुए बोली– "पूज्यवर! मेरे पूर्वकृत कर्मों से प्राप्त हुआ वर देखिए जिसने आपका कुठार और कुश दूर किया है।" श्रीपाल और मदनसुन्दरी से भेंट कर लज्जित हुए राजा ने कर्मस्वरूप को अटूट श्रद्धा से स्वीकार किया। अपने जँवाई को इतनी उच्च स्थिति में देख कर राजा प्रजापाल ने अपने और मदना के भाग्य की बारम्बार सराहना की। श्रीपाल के समस्त स्वरूप का परिचय पाकर राजा के हर्ष की सीमा न रही। राजा और प्रजा सबका भय समाप्त हो गया। उज्जयिनी नगरी में भी परम शान्ति हो गई। *

राजा प्रजापाल और उसकी रानियाँ तथा अन्य सम्बन्धी व श्रेष्ठिगण श्रीपाल कुमार से भेंट करने उसके पड़ाव पर आये। अपने विशाल परिकर और पुरवासियों के आगमन से वहाँ एक भारी जमाव हो गया। महाराजा श्रीपाल ने सबके मनोरंजनार्थ नृत्य समारोह का आयोजन किया। नर्तक मंडली आहूत हुई। सब नर्तक और नर्तकियाँ सज-धज कर तैयार हो गये परन्तु प्रधान नर्तकी का मन आज नृत्य करने का नहीं था। वह अनमनी बनी रही। सखियों के बार-बार यह कहने पर कि महाराज की आज्ञा का उल्लंघन तुम जैसी सुयोग्य के लिए उचित नहीं, नर्तकी भारी मन से उठी और बड़ी मुश्किल से रंग-मंडप में लाई गई। रंग-मंडप में प्रवेश करने के बाद उसने दर्शकों में जो अपने परिवारजनों को देखा तो वह बहुत घबराई और उसने अपने हृदय की सम्पूर्ण वेदना को एक दोहे के माध्यम से व्यक्त कर दिया–

कहाँ मालव, कहाँ शंखपुर; कहाँ बब्बर कहाँ नट्ट।
सुरसुन्दरी नचाविये, पड़ी दैवसिर दट्ट।।

सुरसुन्दरी द्वारा कहे गये इस दोहे ने सबको चौंका दिया।

माता सौभाग्यसुन्दरी अपने आसन पर बैठी न रह सकी, उसने शीघ्रता से उठ कर अपनी पुत्री को गले लगाया। सुरसुन्दरी की घनीभूत पीड़ा आँखों से बरसने लगी। माता की आँखें भी भर आईं। सारा वातावरण ही बदल गया। सब सुरसुन्दरी के जीवन के प्रति जिज्ञासु हो उठे। सौभाग्यसुन्दरी ने विलाप करती हुई पुत्री को धैर्य बँधाया और उसे अपना हाल बताने को कहा। सुरसुन्दरी ने अपनी करुण कहानी सबके सामने इस प्रकार सुनाई–

"माँ! विवाह के बाद आप लोगों से विदा हो कर हम शंखपुरी के निकट पहुँचे। शुभ मुहूर्त में नगर में प्रवेश करेंगे, यह सोच कर रात्रि विश्राम नगर के बाहर एक उद्यान में किया। बराती तो धीरे-धीरे खिसक कर नगर में चले गए। हम लोग बहुत थोड़े रह गए। रात्रि के दूसरे पहर में अचानक कुछ दस्युओं ने आक्रमण कर दिया तो मेरे पति व अन्य सभी लोग भाग खड़े हुए। धन-सम्पत्ति सहित उन्होंने मुझे पकड़ लिया। वहाँ से अपने साथ ले जाकर उन्होंने मुझे किसी सार्थपति को बेच दिया। उसने मुझे बब्बरकुल की वेश्या को बेच दिया। वेश्या ने मुझे नृत्य-संगीत कला सिखाई। राजा महाकाल ने जब मेरा नृत्य देखा तो उन्होंने मुझे कालानिपुण समझ कर राजमहल की नर्तकियों में प्रधान पद दिया। तब से मैं राज-दरबार में नृत्य-गान से राजा का मनोरंजन करने लगी। कुछ समय बाद श्रीपाल कुमार आए। राजा महाकाल ने अपनी कन्या का विवाह आपसे किया। विवाह में अन्य वस्तुओं के साथ प्रीतिवश इन्हें नव-नाटक भी प्रदान किये तब से मैं इनके आगे भी सदा अन्य नर्तकियों के साथ नाचती रही। परन्तु आज सारे कुटुम्ब को अपने समक्ष देख कर मेरा हृदय

दुःख से भर आया। अतः विवश होकर इस दोहे के माध्यम से मैंने अपनी व्यथा व्यक्त कर दी।"

अपने पिता राजा प्रजापाल की ओर उन्मुख होकर सुरसुन्दरी बोली– "पूज्यवर! मैं अभागिनी हूँ, आपने तो मेरा विवाह भारी विभूति से किया था, परन्तु मेरे भाग्य ने मेरी यह दशा कर दी, किसे दोष दिया जाए–

भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषं।
समुद्रमथनाल्लेभे, हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्।।१।।
पिता रत्नाकरो यस्य, लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी।
शंखो भिक्षाटनं कुर्यात् फलं भाग्यानुसारतः।।२।।

भाग्य ही के सब खेल हैं। आपने तो मेरा विवाह खूब धूमधाम से राजकुमार के साथ किया था लेकिन मेरे भाग्य की विडम्बना ही समझिये, मुझे सबके सामने नाचने के लिए मजबूर होना पड़ा। मुझे पाँवों में पायल नहीं घुँघरू बाँधने पड़े।"

यह सुन कर महाराजा श्रीपाल का मन ग्लानि से भर उठा– "अहो! मैं मदना की बहन अपनी साली को ही नचाता रहा – पर मुझे मालूम भी तो नहीं था।"

महाराजा श्रीपाल ने तत्काल अपने सुभट भेज कर अरिदमन कुमार की खोज करवाई। कुछ ही दिनों में सुभट अरिदमन कुमार को लेकर उपस्थित हो गए। महाराजा ने कुमार का अतिथि सत्कार किया और कुमार के बल और साहस पर तीखा व्यंग्य भी– "कुमार! यदि स्त्री को सँभालने की शक्ति न थी तो विवाह किया क्यों? यदि निर्वाह नहीं कर सकते थे तो उत्तरदायित्व लिया क्यों? यदि सामर्थ्य नहीं था तो साहस किया क्यों? स्त्री तो अबला होती है। उसका रक्षक

उसका पति होता है और पति ही यदि संकट आने पर भीरु बन कर पलायन कर जाए तो उसका सहायक कौन रह जाता है?"

अरिदमन कुमार को अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ। उन्होंने सबसे क्षमा माँगी। सभी परिवारजनों ने पुनः उन्हें सुरसुन्दरी प्रदान की।

इसी शुभ प्रसंग के अवसर पर महाराज श्रीपाल ने अपने पिता के समय के मंत्री मतिसागर को 'अमात्य' पद प्रदान किया और अपने दुःख के दिनों के साथी सात सौ जन को 'राणा' पदवी (नायक पद) से विभूषित किया। परिवारजनों को वस्त्राभूषण भेंट कर उनका बहुमान किया। अपने वीर सुभटों को यथायोग्य पारितोषिक प्रदान कर उन्हें भी सम्मानित किया। *

(११)

शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, हर्ष-विषाद, प्रकाश-अंधकार आदि का नाम ही जीवन है। प्रत्येक के जीवन में ऐसे उतार-चढ़ाव, सुख-दुःख आते ही रहते हैं। एक दिन वयोवृद्ध महामात्य मतिसागर ने महाराजा श्रीपाल से निवेदन किया कि– "हे नाथ! पिता की राजगद्दी आपको बुला रही है। दुष्ट अजितसेन छल-कपट करके बाल्यावस्था में ही आपको राज्य से हटा कर स्वयं राज्याधिपति बन गया। अतः अब उसे हटा कर आप अपना राज्य ग्रहण करें तभी आपकी विपुल समृद्धि तथा सेना संग्रह सार्थक हो।"

अमात्य से परामर्श कर महाराजा श्रीपाल ने अपना एक दूत चम्पा नगरी के अधिपति अजितसेन के पास भेजा। दूत ने

जाकर राजा अजितसेन को अपने राजा का संदेश इस प्रकार सुनाया– "हे राजन्! महाराजा श्रीपाल पहले तो बालक थे, राज्यभार ग्रहण करने में समर्थ नहीं थे। अतः आपने राज्य ले लिया तो कुछ हर्ज नहीं लेकिन अब आप उनका राज्य लौटा दें। इस वक्त उनकी विजय-पताका सर्वत्र फहरा रही है, उनके पास अगणित सेना है। यदि आप स्वेच्छा से राज्य नहीं लौटाएँगे, तो वे अपने बल पर अपना राज्य अवश्य लेंगे।" दूत के इन वचनों को सुन कर अजितसेन अत्यन्त कुपित हो गये। आवेश में बोले– "हे दूत! तू अवध्य है, अतः मैं तुझे जीता छोड़ता हूँ। तेरा स्वामी मेरा शत्रु है; बचपन में भी मैंने उसे जीता छोड़ दिया था और इस समय उसने सोते सिंह को जगाया है। मेरे अजित बल से तेरा स्वामी भस्मीभूत हो जाएगा, तभी मुझे सच्चा अजितसेन जानना। जा, तेरे स्वामी को तैयार कर शीघ्र भेज, अजितसेन भी सामने आकर युद्ध करेगा।"

दूत ने आकर सारा वार्तालाप ज्यों-का-त्यों अपने स्वामी को निवेदन कर दिया। अब दोनों ओर युद्ध की तैयारी होने लगी। महाराजा श्रीपाल अपनी विशाल-वाहिनी के साथ चम्पानगरी की सीमा पर आ पहुँचे। अजितसेन भी अपनी प्रबल सेना लेकर सामने आ गया। रणभेरी बज उठी, भीषण मारकाट होने लगी। श्रीपाल की विशाल वाहिनी के समक्ष अजितसेन की क्षुद्र सेना न टिक सकी। महाराजा के राणाओं ने अजितसेन को बन्दी बना कर श्रीपाल के समक्ष प्रस्तुत किया। श्रीपाल ने आगे बढ़ कर अपने काका के बन्धन खोले और कहा– "हे तात! आप खेद खिन्न मत हुजिए। अपना राज्य खुशी से संभालिये, अन्य चाहिए सो भी लीजिए।"

पराजय के कारण अजितसेन को अपने सच्चे स्वरूप की चिन्ता हुई। उनकी चिन्ता कुछ ही क्षणों में चिन्तन में बदल गई और इस चिन्तन ने वैराग्य को जन्म दिया। वे विचार करने लगे– अहो! सांसारिक भोगों के लिए मैंने क्या-क्या नहीं किया? मेरी आत्मा कितनी मलिन है! कहाँ तो मैं पापिष्ठ परद्रोहपरायण और कहाँ यह बालक परोपकारी धर्मपरायण! अरे गोत्रद्रोह से कीर्ति का नाश होता है, राजद्रोह से नीति का नाश होता है और बालद्रोह से सुगति का नाश होता है! हा! ये तीनों ही अकृत्य मैंने किये। हे प्रभो! मेरी क्या गति होगी?

उन्हें अपने पापपूर्ण जीवन से विरक्ति हो गई। वे पश्चाताप करने लगे और उन्होंने तत्काल सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली परमेश्वरी दीक्षा लेने का संकल्प किया। उनकी वैराग्य भावना को बलवती देख शासन देवी ने यतिलिंग अर्पण किया। अब राजा अजितसेन शान्त, सौम्य-मुद्राधारी मुनि अजितसेन हो गए।

कुछ ही क्षणों में यह विशाल परिवर्तन देख महाराजा श्रीपाल उनके चरणों में विनत हो गए– "हे संयमधारिन आपने अपना नाम सार्थक कर लिया। हार कर भी आप जीत गये। इस बाह्य युद्ध में भले ही मैंने आपको पराजित किया है, लेकिन अंतरंग की मोह-ममता को जीत कर आपने हमें विजित कर लिया। आप सर्व विरति संयम मार्ग पर आरूढ़ हुए हैं। आपने ऐसे नगर का निर्माण कर लिया है जिस पर अधिकार करना मुझ जैसे तुच्छ की शक्ति के बाहर है–

"सद्धं च नगरं किच्चा तवसंवर मग्गलं।
खंतीनि ऊणागारं तिगुत्तं दुप्पधंसगं।।"

श्रद्धारूप नगर, तप संवर की अर्गला, क्षमादि का परकोटा

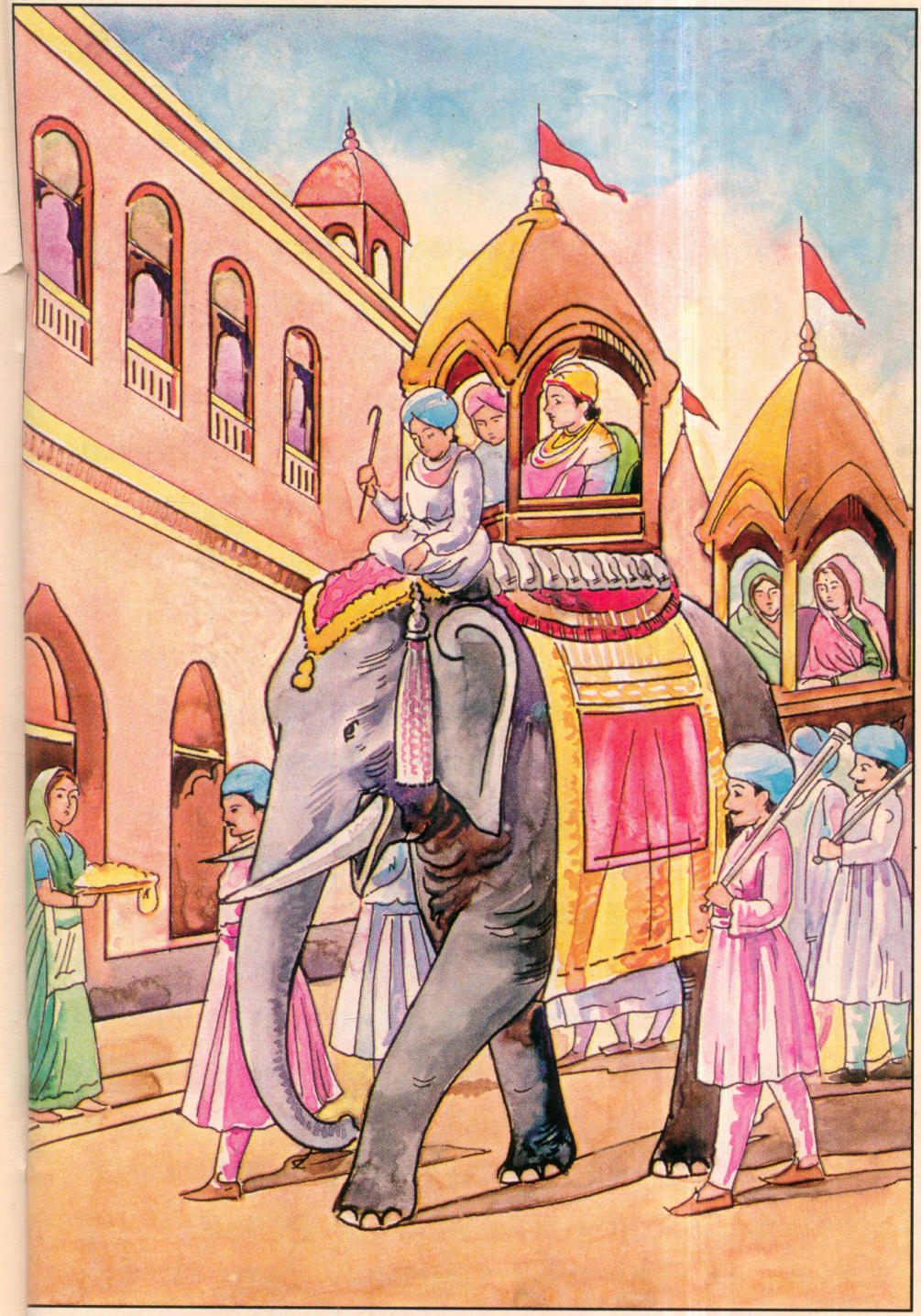

महाराजा श्री पाल ने शुभ मुहर्त में चम्पानगरी में प्रवेश किया। जगह जगह महाराज की आरती उतारी गई। स्त्रियों ने मंगल गीत गाए।

और त्रिगुप्ति रूप गुप्ति– ऐसा मुश्किल से जीता जाने वाला नगर है। ऐसे नगर में आप संयम-साधना में सतत् संलग्न रहते हुए हमें भी धर्माभिमुख करें, यही प्रार्थना है।

उपस्थित समुदाय ने मुनिराज की वन्दना की। मुनिश्री वहाँ से विहार कर गए। महाराजा श्रीपाल ने अजितसेन राजा के स्थान पर उनके पुत्र को राज्य भार सँभलवाया। मुनि अजितसेन अपनी आत्मशुद्धि में जुट गए। कालान्तर में उन्हें अवधिज्ञान हो गया। इस ज्ञान से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप से द्रव्यों को जानने की क्षमता प्राप्त होती है। *

महाराजा श्रीपाल ने शुभ मुहूर्त में चम्पानगरी में प्रवेश किया। अनेक तोरण द्वार बनाये गये थे। जगह-जगह महाराजा की आरती उतारी गई। स्त्रियों ने मंगल गीत गाए। बंदीजन विरुद बखानने लगे। अनेक राजाओं, सेठ-साहूकारों और विशाल प्रजा के समक्ष महा मान सन्मानपूर्वक महाराजा श्रीपाल का राज्याभिषेक हुआ। सभी ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार भेंट दी। वर्षों बाद महाराजा श्रीपाल अपने पिता के राजसिंहासन पर विराजे। माता कमलप्रभा के हर्ष की सीमा नहीं थी। वह राजमाता के गौरव से गौरवान्वित हुई। मदनसुन्दरी को (मयणासुन्दरी या मैना सुन्दरी) महा पटरानी का गौरव मिला। शेष आठ को लघु पटरानियाँ बनाया गया। मतिसागर महामात्य हुए। धवल सेठ के तीन हितैषी मित्रों को भी आमात्य पद पर नियुक्त किया गया। धवल के पुत्र विमल को नगर-श्रेष्ठि का सम्मान दिया गया। इस तरह राज्य कार्य भली-प्रकार चलाने के लिए महाराजा श्रीपाल ने सभी योग्य पुरुषों को उनकी योग्यतानुसार विभिन्न पदों पर नियुक्त किया। राज्याभिषेक के दिन महाराजा ने प्रसन्नतापूर्वक

प्रजाजन को दान स्वरूप वस्त्राभूषण वितरित किए।

श्रीपाल अपना राज्य कार्य भली प्रकार संचालित करते हुए भी धर्म से विमुख नहीं हुए। उनकी धर्माराधना भी अनवरत प्रवहमान थी। उन्होंने सुवर्णमय नव जिन-मन्दिर बनवाए, जिनमें रत्नमय जिन-बिम्ब स्थापित किये। उनकी नवपदाराधना-पूजा भी हमेशा चलती रहती थी। अहिंसक श्रीपाल ने अपने राज्य में सर्वत्र हिंसा का निषेध करवाया। प्रजा और राज्य की सुख-समृद्धि बढ़ने लगी, चारों ओर शान्ति एवं अहिंसा का साम्राज्य छा गया। *

अवधिज्ञानी ऋषिराज अजितसेन विहार करते एक समय चम्पानगरी के उद्यान में पधारे। वनपाल ने मुनिश्री के आगमन की सूचना महाराजा श्रीपाल को दी। यह शुभ सूचना पाकर धर्मनिष्ठ श्रीपाल बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर वनपाल को पुरस्कृत किया। सारे परिवार को मुनि-वन्दना हेतु चलने के लिए सूचना भिजवायी। थोड़ी ही देर बाद महाराजा श्रीपाल अपने परिवार सहित उद्यान में आ पहुँचे। उन्होंने मुनिश्री की तीन प्रदक्षिणा देकर नमन किया। वन्दन-नमन के बाद सबके यथायोग्य स्थान पर बैठ जाने पर महामुनि ने देशना प्रारम्भ की–

भो भव्यात्माओ! इस संसार में मनुष्य पर्याय प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है। कदाचित् किसी पुण्ययोग से मनुष्य भव मिल भी जाए तो आर्यक्षेत्र मिलना कठिन है; यह भी मिल जाय तो उत्तम कुल, इन्द्रियों की पूर्णता, नीरोगता, दीर्घायु, सद्गुरु का समागम, आगम श्रवण, तत्त्वरुचि, तत्त्वबोध आदि का प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। आत्मस्वरूप की उपलब्धि ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। मनुष्य पर्याय धारण करके जिसने

धर्म का अवलम्बन नहीं लिया उसका जन्म अकारथ ही गया।

जिनेन्द्र भगवान् ने साधु और गृहस्थ के लिए अनगार और सागार रूप धर्म का व्याख्यान किया है। श्रावक के मुख्यतः बारह व्रत होते हैं–

पंचाणुव्रत : (१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य; और (५) परिग्रह।

तीन गुणव्रत : (१) दिग्व्रत (दिशा परिमाण), (२) भोगोपभोग परिमाणव्रत; और (३) अनर्थदंडव्रत।

चार शिक्षाव्रत : (१) सामायिक, (२) देशावकासिक, (३) प्रोषधोपवास? और (४) अतिथि संविभाग।

बारह व्रतों के संक्षिप्त विवेचन के बाद मुनिश्री ने विराम लिया तो महाराजा श्रीपाल ने विनयपूर्वक उनसे नम्र प्रार्थना की कि हे मुनीश्वर! मुझे जीवन में सुख एवं दुःख का अद्भुत अनुभव हुआ है। पुण्य प्रभाव से मेरा जन्म राजघराने में हुआ लेकिन अशुभ योग से राजसिंहासन भी गया और मुझे कोढ़ ने घेर लिया। शुभ कर्मोदय से रोग शमन हुआ और फिर मैं जहाँ-जहाँ गया वहाँ मुझे सुखद समागम ही प्राप्त हुए, यों बीच में दुःख की तरंगें भी आती रहीं। भगवन्! कृपा कर यह बताइए कि यह सब क्यों हुआ? किन कर्मों के कारण हुआ? यह सब जानने की मेरे उत्कट अभिलाषा है।

श्रीपाल की जिज्ञासाएँ सुन कर परमोपकारी मुनिराज कहने लगे– "हे नरपुंगव! वृक्ष है तो बीज अवश्य है। कभी बीज के बिना वृक्ष नहीं होता। इस संसार में जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के आधीन होकर सुख-दुःख का अनुभव करता है। अतीत का पुरुषार्थ ही वर्तमान में उदय रूप में आता है। पुरुषार्थ जलता हुआ अंगारा है और कर्म राख की ढेरी। कर्म

पुरुषार्थ से ही बनता है। तुम्हारे पूर्व जन्म का पुरुषार्थ ही इस जन्म में कर्म रूप उदय आया है। शुभ-अशुभ एवं पश्चाताप के भावों में झूलते हुए तुमने पुण्य-पाप का छायाचित्र तैयार किया है।

पूर्व-जन्म में तुम इस भरतक्षेत्र में हिरण्यपुर नगर में श्रीकान्त नाम के राजा थे। शिकार की विशेष रुचि व आसक्ति थी; स्वच्छन्द, मनोरंजनप्रिय स्वभाव था। श्रीमती नाम की पति-भक्त पत्नी थी। वह दयालु, शान्ति-प्रिय, विवेकी एवं धर्म में आस्था रखने वाली थी। तुम्हारे शिकार के शौक से परेशान होकर वह अनेक बार तुम्हें समझाया करती थी कि हे स्वामिन्! इन वन्य पशुओं ने, निरपराध मूक जानवरों ने आपका क्या बिगाड़ा है; जो आप अपने मनोरंजन के लिए तीर-कमान लिये इनको मौत बाँटते फिरते हैं? हिंसानन्दी रौद्रध्यान धारण करने वाला व्यक्ति नरक का पात्र होता है। हे प्राणनाथ! अपनी आत्मा को दुर्गति का मेहमान बनाने से बचाइये। यह क्षत्रियों का आचार नहीं है, यह तो चांडालों का कर्म है। आप तो न्याय-नीतिवान् हैं। जो लोग पर-प्राणों को पीड़ित करके अथवा नष्ट करके अपना पोषण करते हैं, वे अपना ही अहित करते हैं। अतः आप इस कर्म को त्याग कर दीजिए।

शिकार में आसक्त राजा उस समय तो स्वीकार कर लेता है कि मैं अब से न मारूँगा, मगर जब बाहर जाता है तब पूर्ववत् मारने लगता है। एक समय सात सौ पराक्रमी सुभटों को लेकर वन में शिकार खेलने को गया। वहाँ उसने एक साधु महाराज को देखा, तो बड़ी उदंडता से बोला– "अरे यह कोढ़िया है" तब सात सौ ही वीरों ने 'हाँ साहब! कुष्ठि है'

ऐसा कह कर समर्थन किया और वे उन महात्मा को लकड़ियों से पीटने लगे, तब राजा हर्षित होने लगा। क्षमा के सागर मुनिराज तो क्षमा और साम्य भाव में डूब गए और राजा अपने साथियों सहित हिरणों के टोले के पीछे दौड़े। रात्रि में राजा ने अपनी दिनचर्या रानी को बताई। रानी ने पुनः राजा को समझाया, हिंसा त्याग करने की बात कही और यह भी कह दिया कि महाव्रतधारी मुनिराज की पिटाई कर, उपहास कर तुमने बड़ा भारी दोष किया है। राजा के मन में भी बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने शिकार न करने का संकल्प किया। परन्तु फिर बाहर निकला तो अपने संकल्प को भूल गया।

एक दिन राजा अपने सुभटों सहित फिर शिकार पर गया। वन प्रदेश में नदी के किनारे ध्यानस्थ एक मुनिराज को देख कर उच्छृंखलता के वशीभूत हो उसने मुनि को उठा कर नदी में फेंक दिया। नदी के जल में मुनिराज को डूबते-उतराते देखकर राजा को करुणा हो आई। उन्होंने मुनिराज को निकाल कर फिर जमीन पर रखा। रात्रि में रानी को उन्होंने यह घटना सुनाई तो श्रीमती रानी बहुत क्षुब्ध हुई– हे नाथ! आप बार-बार यह दुष्कृत्य क्यों करते हैं? आत्माराधना में संलग्न क्षमाशील मुनियों को पीड़ा पहुँचाने वाली आपकी आत्मा कहाँ जाएगी? विचार तो कीजिए। राजा मौन हो गये। उनका मन ग्लानि से भर उठा। कई दिन तक हिंसा काण्ड न भी किया फिर भी राजा तो श्रीमती की शिक्षा भूल गया।

किसी एक दिन राजा अपने झरोखे में बैठे थे कि अचानक उन्हें सामने से आते मलिन वेषधारी एक मुनिराज दिखाई दिये। राजा ने उन्हें डूम पुकार कर अपने सुभटों से उन्हें भगाने के लिए कहा। आज्ञा पाते ही सुभटों ने मुनिराज को

शहर से बाहर निकाल दिया। इस दृश्य को रानी श्रीमती ने भी देखा। वह शीघ्रतापूर्वक राजा के पास आई और उसने क्रुद्ध होकर उन्हें इस अकृत्य के लिए धिक्कारा। तब लज्जित होकर राजा श्रीकान्त ने सेवक भेज कर मुनि महाराज को रुकवाया और उनसे क्षमा माँगी।

नरस्याभूषणं रूपं, रूपस्याभूषणं गुणः।
गुणस्याभूषणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभूषणं क्षमा।।

नर का भूषण रूप है, रूप का भूषण गुण है, गुण का भूषण ज्ञान है और ज्ञान का भूषण क्षमा है। आत्मज्ञानी क्षमाशील मुनिराज ने राजा को आशीर्वाद दिया।

अपने पति की चेष्टाओं से व्यथित श्रीमती ने उस क्षमाशील मुनिराज को निवेदन किया कि हे महामुने! मेरे स्वामी ने अपने जीवन में हिंसादि पाप किये हैं एवं मुनि महाराजों की आसातना का जघन्य पाप भी किया है। हे भगवन्! ऐसा कोई उपाय बताइए जिससे इन पापों का नाश हो सके।

करुणाशील मुनिराज ने 'श्रीसिद्धचक्र' की आराधना करने के लिए कहा। श्रीमती और श्रीकान्त ने मुनिराज की बताई हुई विधि के अनुसार 'नवपद' का आराधन किया। उद्यापन के समय आठ सखियों ने सिद्धचक्र आराधना की अनुमोदना की। अंगरक्षक रूप सात सौ सुभटों ने धर्मकार्य की प्रशंशा की। एक समय श्रीकान्त भूपाल ने सात सौ पुरुषों को साथ ले सिंहसेन राजा का एक गाँव लूट लिया। वे लूट में प्राप्त सामग्री लेकर लौट रहे थे कि राजा सिंहसेन ने अपनी सेना लेकर उन पर धावा बोल दिया। संग्राम हुआ। श्रीकान्त के सुभट मृत्यु को प्राप्त हुए।

महामुनि अजितसेन कहने लगे–"हे राजन्! पूर्वभव के फल तुझे यहाँ पर इस प्रकार मिले – तुम श्रीकान्त राजा हो, मदनसुन्दरी रानी श्रीमती, जिन आठ सखियों ने अनुमोदन की थी, वे तुम्हारी अन्य रानियाँ हैं। सात सौ सुभट तुम्हारे सात सौ राणा हैं और सिंहसेन राजा का जीव मैं अजितसेन हूँ।

तुमने मुनि को कोढ़ी कहा अतः तुम भी कोढ़ी बने। तुमने साधु-महात्मा को नदी में गिराया, अतः तुम भी समुद्र में गिरे। तुमने उन्हें शीघ्र बाहर निकाल लिया, अतः तुम भी समुद्र में-से निकल आए। तुमने महाव्रती साधु को डूम कहा, अतः तुम्हें भी 'डूम' शब्द सुनना पड़ा। सिंहसेन राजा का गाँव तुमने लूटा, तो अजितसेन ने तुम्हारा भी राज्य ले लिया। इन अशुभ कार्यों के साथ तुम हृदय से पश्चात्ताप भी करते रहे, अतः पाप का बन्धन शिथिल हुआ। नवपदाराधना की पुण्य कमाई की। उस आराधना के फलस्वरूप ही तुम्हें इतनी अधिक समृद्धि मिली है।"

अपने पूर्वभव के इतिहास को जान कर महाराजा श्रीपाल चिन्तन की गहराई में उतर गए– अहो! यह संसार कैसा विचित्र है? कर्मबन्ध प्रतिसमय हो रहा है। अशुभ परिणामों से अशुभ बन्ध एवं शुभ परिणामों से शुभबन्ध। परिणामों से ही बन्ध है। बन्ध से ही बन्धन और संसार परिभ्रमण है।

उन्होंने मुनिराज से प्रश्न कर लिया– "हे प्रभो! इस बन्धन से छूटने का उपाय है? मुझ में इतना साहस और सामर्थ्य नहीं कि मैं भी आपके समान पंच महाव्रत धारण करके आत्माराधना में संलग्न हो जाऊँ, लेकिन फिर भी जिस उपाय से आत्मशुद्धि हो, वह निर्देश देने का कष्ट करें।"

मुनिश्री ने बोला– "राजन्! गृहस्थ के बारह व्रतों को

स्वीकार करो। शुद्ध में पहुँचने के लिए अशुभ से छूट कर शुभ में आओ। अतः आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए सेवा, भक्ति, नवपदाराधना आदि शुभ क्रियाओं का आलम्बन लो। देशसंयमाराधना करते हुए तुम यहीं से नवम् देवलोक में उत्पन्न होओगे। उसके बाद मनुष्यगति एवं देवगति में क्रम से भ्रमण करते हुए नवमें भव में तुम्हें मोक्ष प्राप्ति होगी।

श्रीपाल महाराजा ने नतमस्तक होकर गुरुदेव की देशना स्वीकार की। मुनि महाराज अन्यत्र विहार कर गए। श्रीपाल महाराज अपनी मातेश्वरी तथा अन्य रानियों के साथ श्रीसिद्धचक्र की पूजाभक्ति में तथा ध्यान में तल्लीन रहते हुए अपने जीवन के दिन व्यतीत करने लगे।

महाराजा श्रीपाल की पटरानियों ने त्रिभुवनपाल आदि नव पुत्रों को जन्म दिया। त्रिभुवनपाल के योग्य होने पर उसे युवराज पद प्रदान किया गया और अवसर आने पर उसका राज्याभिषेक भी किया गया।

धर्माराधना करते हुए, आत्मशुद्धि बढ़ाते हुए महाराज श्रीपाल आयुष्य पूर्ण होने पर नवें स्वर्ग में देवेन्द्र रूप में उत्पन्न हुए। कमलप्रभा माता, महापटरानी एवं अन्य पटरानियाँ – सब अपनी-अपनी धर्मसाधना करते हुए शुभध्यान पूर्वक यह देह छोड़ कर उसी देवलोक में उत्पन्न हुए। *

आराधना विधि

शुभ मास, शुभ दिवस में गुरु महाराज के पास विधिपूर्वक आयम्बिल ओली की तपस्या ग्रहण करें – उसके पश्चात् यह तप आसोज सुदि और चैत्र सुदि सप्तमी–यदि तिथि घटती हो छट्ठ, बढ़ती हो तो अष्टमी से पूनम तक नव आयम्बिल करना

चाहिए– इस प्रकार एक वर्ष में दो बार करते हुए साढ़े चार वर्ष में नव ओली हो जायेगी।

नौ दिन तक देवसिय राइय प्रतिक्रमण दो समय पडिलेहन, गुरु मुख से पच्चक्खान करना चाहिए।

त्रिकाल देवपूजा, मध्याह्न में आठ थुई से देववन्दन, प्रत्येक दिन नवपद के नव चैत्यवंदन, जितने गुण हो उतने ही साथिये, प्रदक्षिणा एवं कायोत्सर्ग करना चाहिए। पच्चक्खाण पारने के चैत्यवंदन के पश्चात् आयम्बिल पुनः चैत्यवंदन, शयन-समय संथारा पोरिसी कहकर भूमि पर संथारा ऊपर सोना चाहिए – शीलव्रत पालन करना चाहिए।

नवपद ओली करण विधि

दिन क्रम	पद का नाम	माला	कायोत्सर्ग लोगस्स खमासमण व प्रदक्षिणा	वर्ण	धान्य
१.	ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं	२०	१२	श्वेत	चावल
२.	ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं	२०	८	लाल	गेहूँ
३.	ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं	२०	३६	पीला	चणा
४.	ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं	२०	२५	नीला	मूंग
५.	ॐ ह्रीं नमो लोए सव्व साहूणं	२०	२७	काला	उड़द
६.	ॐ ह्रीं नमो दंसणस्स	२०	६७	श्वेत	चावल
७.	ॐ ह्रीं नमो नाणस्स	२०	५१	श्वेत	चावल
८.	ॐ ह्रीं नमो चारित्तस्स	२०	७०	श्वेत	चावल
९.	ॐ ह्रीं नमो तवस्स	२०	५०	श्वेत	चावल

ये नवपद जिनशासन में परम तत्त्वभूत हैं। नवपद का यन्त्र विद्याप्रवाद नाम के नौवें पूर्व से उद्धृत किया गया है। मैनासुन्दरी के समक्ष मुनिश्चन्द्र महाराज ने इस पवित्र यन्त्र की विधि इस प्रकार बताई।

यन्त्रविधि

मूल पीठ पर यन्त्रराज के मध्य में 'अर्हं' बीजाक्षर को स्थापन करना। यह बीजाक्षर 'ॐकार' के मध्य में स्थापन करना। इन दोनों ही मन्त्राक्षरों को 'ह्रींकार' के मध्य में स्थापित करके ह्रींकार की ईकार को पीछे से घुमाकर दो कुंडलाकारों से ऊपर से तीनों बीजाक्षर उसके चारों ओर दिशाओं और विदिशाओं में "अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः" इन सोलह स्वरों की स्थापना करना; इस तरह लिखकर–

बाहर अष्टदल कमलाकार एक वलय (गोल) बनाना, उसमें क्रमशः पूर्व दिशा– ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा, दक्षिण दिशा में– ॐ ह्रीं आचार्येभ्यः स्वाहा, पश्चिम दिशा में– ॐ ह्रीं उपाध्यायेभ्यः स्वाहा, उत्तर दिशा में– ॐ ह्रीं सर्व साधुभ्यः स्वाहा; आग्नेय विदिशा में– ॐ ह्रीं दर्शनाय स्वाहा, नेऋत्य विदिशा में– ॐ ह्रीं ज्ञानाय स्वाहा, वायव्य विदिशा में– ॐ ह्रीं चारित्राय स्वाहा, ईशान विदिशा में– ॐ ह्रीं तपसे स्वाहा।

पहिले वलय के बाहर सोलह दल का कमलाकार दूसरा वलय बनाना; एकान्तर (एक-एक को छोड़कर) दल रूप कोष्ठक में, क्रमशः पहिले अ आ इत्यादि सोलह स्वर, दूसरे में– क ख ग घ ङ, तीसरे में– च छ ज झ ञ, चौथे में– ट ठ ड ढ ण, पाँचवें में– त थ द ध न, छठे में– प फ ब भ म, सातवें में– य र ल व, आठवें में– श ह क्ष ज्ञ; इन अक्षरों को लिखना, शेष आठों में '*ॐ नमो अरिहंताणं*' लिखना।

दूसरे वलय के बारह सोलह कोष्ठक वाला तीसरा वलय बनाना, एकान्तर रूप आठ कोष्ठकों में क्रमशः आठ अनाहत

विद्या दिशी-विदिशी में लिखना और शेष आठ अन्तरों में १६ लब्धियाँ अर्थात् प्रत्येक कोष्ठक में दो-दो लब्धियाँ लिखनी चाहिए। इस तरह प्रदक्षिणा करी हुई तीन पंक्तियों में ४८ लब्धियाँ लिखना। *'ॐ ह्रीँ अईं नमो जिवाण।'* इत्यादि ४८ लबिकपद जानना।

यन्त्र के सबसे ऊपर *'ह्रीँ कार'* लिखना, यन्त्र के बाहर ईकार के तीन वलय देना और चौथे वलय के अन्त में *'क्रौं'* अक्षर लिखना, परिधि पर आठ गुरु पादुका– लिखना– (१) *ॐ ह्रीँ अर्हत्पादुकेर्य्य नमः* (२) *ॐ ह्रीँ श्री सिद्धापादुकेभ्यो नमः* (३) *ॐ ह्रीँ परमगुरु परदुकेर्म्य* (६) *ॐ ह्रीँ, अष्टगुरुपादुकेमर्य नमः* (७) *ॐ ह्रीँ अनन्तगुरुपादुकेभ्यो नमः* (८) *ॐ ह्रीँ अनन्तानन्त गुरुपादुकेभ्यो नमः।*

यन्त्र के आधे भाग से बायीं हाथी दो रेखाएँ खींच कर दोनों के जोड़ में कलश का आकर खींच कर दोनों के जोड़ में कलश का आकार बनाना; उसके पश्चात् पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों दिशाओं में – (१) जया (२) विजया (३) जयन्ती (४) अपराजिता तथा आग्नेय आदि विदिशाओं में क्रमशः (१) जम्भा (२) थंभा(३) मोहा (४) श्रद्धा; इस प्रकार लिखना– यन्त्र के ऊपर सौधर्म देवलोकवासी, श्री सिद्धचक्रजी का अधिष्ठायक बहुत से देव और देवियों के अधिपति श्री विमल स्वामी का ध्यान गुरु से जानकर करना, तदन्तर रोहिणी आदि सोलह विद्या-देवियों, गौमुख यक्षादि चौबीस शासन-देव और चक्रेश्वरीजी आदि चौबीस शासन-देवियों; दायीं-बायीं तरफ स्थापना, कलश के मूल में सूर्यादि नौ ग्रहों की स्थापना करनी चाहिए, कलश के गले में नैसर्पी आदि नव विधान का स्थापना करना– (१) नैसपल (२)

पांडुक (३) पिंगल (४) सर्वरत्न (५) महापद्म (६) काल (७) महाकाल (८) माणव (९) शंख क्रमशः लिखना।

उसके पश्चात् (१) कुमुद (२) अंजन (३) वामन (४) पुष्पदन्त – ये चार दिग्पाल और (१) मानभद्र (२) पूर्णभद्र (३) कपिल (४) पिगल; ये चार वीरों की पूर्व आदि दिशाओं में स्थापना करना; दस दिशापालों की इस प्रकार स्थापना करनी (१) पूर्व में– *ॐ इन्द्राय नमः* (२) अग्निकोण में– *ॐ आग्नें नमः* (३) दक्षिण में– *ॐ यमाय नमः* (४) नैऋत कोण में– *ॐ नैऋत्ये नमः* (५) पश्चिम में– *ॐ वरुणाय नमः* (६) वायव्य कोण में– *ॐ वायवे नमः* (७) उत्तर में– *ॐ कुबेराय नमः* (८) ईशान में– *ॐ ईशानाय नमः* (९) ऊर्ध्व दिशा में– *ॐ ब्रह्मणे नमः* (१०) अधोदिशा में– *ॐ नागाय नमः* इन्हें क्रमशः लिखना। यन्त्र के दायीं तरफ– *ॐ क्षेत्रपालाय नमः* – लिखना।

इस प्रकार से यह यन्त्र का विधान है।